जैनधर्म की कहानियाँ

भाग- 28

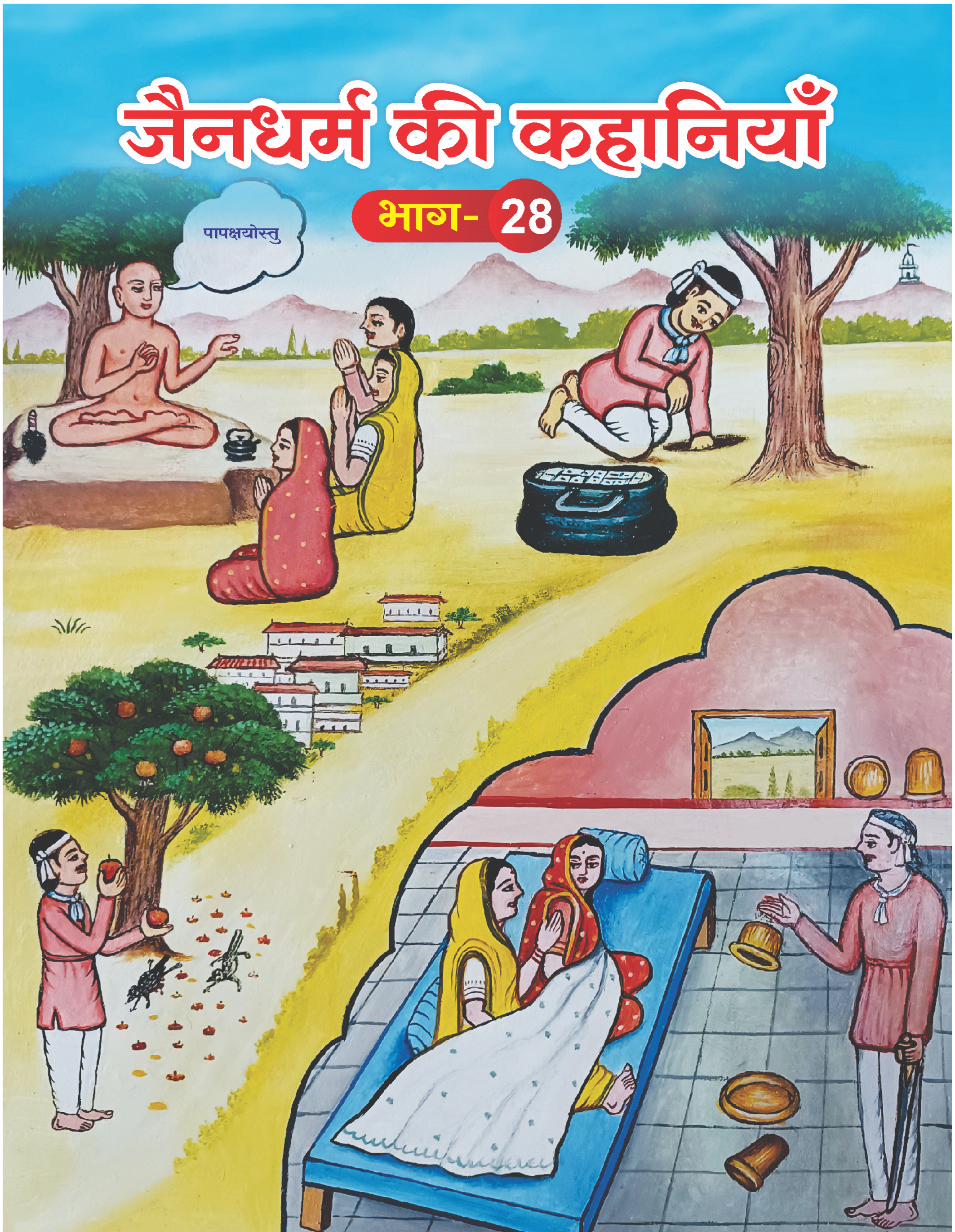

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन–खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन–सोनगढ़

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ३८ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग - २८)

लेखक :

ब्र. (डॉ.) आरती बेन जैन छिन्दवाड़ा

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (छत्तीसगढ़)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

कहान रश्मि, सोनगढ़ – 364250 (सौराष्ट्र)

प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ
श्रीमद् जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव, सोनगढ़ के अवसर पर
(१९ से २६ जनवरी, २०२४)

न्यौछावर
पन्द्रह रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली**
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता लामरोड
देवलाली,नासिक-४२२ ४०१

३. **तीर्थधाम मंगलायतन**
पो.- सासनी २०४ २१६
जिला- हाथरस (उ.प्र.)

४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट**
आ. कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर
सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५
जिला-दतिया (म.प्र.)

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था –
जैन कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302 015
मोबाइल : 9414717816, 8619975965
e-mail:
jaincomputers74@gmail.com

अनुक्रमणिका

प्रतिज्ञा का फल	9
संस्कारों का बल (नाटक)	13
पर्यायमूढ़ जीव (नाटक)	15
हर विवाद का हल.(नाटक)	19
भरतजी घर में ही...(नाटक)	21
वर्णीजी और... (नाटक)	24
विपरीताभिनिवेश...(नाटक)	27
कर भला तो हो भला	32
हृदय परिवर्तन	41
प्रगट हुआ जब अन्तरंग	44
सुरत राजा की प्रेरक कथा	51
करनी का फल (पाण्डवों पर आधारित)	53
संस्कारों का चमत्कार	58
नियम का सुफल	64
भीष्मपितामह का..	67
सेठानी दानशीला	70
सती मैनासुन्दरी	74
परमात्मा के दो प्रकार	79

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से २८ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) इत्यादि ३८ पुष्पों में लगभग ७ लाख २७ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में पुराण-पुरुषों की कथा के साथ-साथ कुछ काल्पनिक शिक्षाप्रद कहानियाँ एवं लघु नाटक (आयोजनों में मंचन योग्य) संगृहीत हैं, जो हमें ब्र. आरती बेन जैन छिन्दवाड़ा द्वारा प्राप्त हुई हैं, अधिकतर कहानियाँ तो ब्र. बेन ने स्वयं लिखी हैं, पर कुछ संकलित करके भेजी हैं। इसमें कुल १७ कहानियों को प्रकाशित किया जा रहा है। ये कहानियाँ हमें लौकिक व्यवहार के साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षा का भी पाठ सिखाती हैं। इसका सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम दोनों के आभारी हैं। इन कथा-कहानियों का लाभ सभी वर्ग के लोग ले रहे हैं, यह इनकी उपयोगिता को सिद्ध करती है। इसी कारण इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है।

आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे। साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक, संरक्षक एवं परम सहायक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

पुस्तक प्राप्ति, **सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 एवं आई डी बी आई खाता क्रमांक 526100100004648 IFSC-IBKL0000526 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।**

विनम्र आदराञ्जली

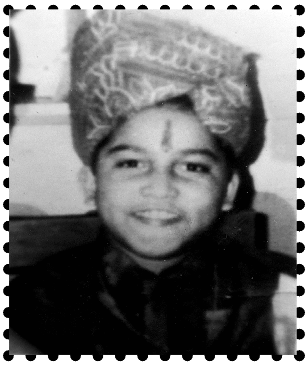

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

साहित्य प्रकाशन फण्ड

1100/- रुपये देनेवाले

श्री राजकुमार आशीष जैन छुईखदान, वीरटूनू अष्प जैन छुईखदान
श्री गगनचंद अतुल जैन छुईखदान, श्रीमती क्षमा योगेश जैन धमतरी
मुन्नीबाई विनीतादेवी ह. शरद जैन डोंगरगढ़

1000/- रुपये देनेवाले

झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरिटेबल ट्रस्ट खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचंद खैरागढ़, श्रीमती चंद्रकला प्रेमचंद जैन खैरागढ़
ब्र. ताराबाई ब्र. मैनाबाई जैन सोनगढ़, श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल जैन खैरागढ़
श्रीमती वीणाबेन सुरेशकुमार राजनांदगांव, श्रीमती श्रद्धा-शुद्धात्मप्रकाश विदिशा

500/- रुपये देनेवाले

श्री सुमेरमल करनजी सांखला छुईखदान, श्री अभयकुमार पुजारी खनियाँधाना
श्री अनिल जैन छुईखदान, श्रीमती मीनादेवी सुधीरकुमार जैन छुईखदान
श्रीमती राजकुमारी जैन डोंगरगढ़, श्रीमती ममता रमेशचंद शास्त्री सोनगढ़
श्रीमती गुलाबबाई पन्नालाल छाजेड़ खैरागढ़, ऊषा जैन भिलाई
श्रीमती आंचल-निश्चल जैन खैरागढ़, श्री अमृतलाल जैन छुईखदान,
श्रीमती समता/नम्रता जैन कानपुर/सोनगढ़, श्रीमती सुवर्णा प्रदीपकुमार जैन
खैरागढ़, गुप्तदान छुईखदान, शांतिबाई बुरड दुर्ग,

201/- रुपये देनेवाले

श्रीमती साधना-संजयकुमार जैन भिलाई,
ध्वनि-मनीश शाह बडोदरा, प्रभा जैन छुईखदान

अबतक प्रकाशित एवं प्रचारित
चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती) एवं
जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से २८
तथा अन्य लगभग
७ लाख २७ हजार प्रतियाँ

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल भायाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता–अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

संरक्षक सदस्य

श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली

परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता

स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

1 प्रतिज्ञा का फल

रथग्रीव चोर तीव्रगति से जंगल की ओर भागा जा रहा था। यद्यपि उसके सिर पर बड़ी भारी पोटली रखी हुई थी, तथापि उसे पकड़े जाने का भय था। उसने आज चोरी में लम्बा हाथ मारा था। चोरी के माल को छुपाने के लिए वह एक पेड़ के नीचे गड्ढा खोदता है और उस माल में से कुछ धन व जेवरात अपनी जेबों में भरकर बाकी को गड्ढे में छुपा देता है। यह सब कार्य करते-करते सुबह हो जाती है। उजाला होते ही वह क्या देखता है; जहाँ उसने माल छुपाया है बिल्कुल उसके सामने वाले पेड़ के नीचे एक मुनिराज ध्यान मुद्रा में विराजमान है। उसे शंका हो जाती है कि उसे माल छुपाते हुए कहीं मुनिराज ने तो नहीं देख लिया ?

वह मुनिराज के निकट जाकर बैठ जाता है और मन ही मन विचार करता है कि इनसे कुछ बातचीत करूँ, ताकि पता लगा सकूँ कि कहीं इन्होंने मुझे देख तो नहीं लिया।

जब मुनिराज का ध्यान पूर्ण हो जाता है तब रथग्रीव उन्हें कपट से नमस्कार करता है। मुनिराज भी उसे 'पाप क्षयोऽस्तु' का आशीर्वाद देते हैं। मुनिराज उसे निकटभव्य जान पाँच पाप के त्याग का उपदेश देते हैं। लेकिन रथग्रीव पर उपदेश का कोई असर नहीं होता, वह तो इसी उधेड़बुन में लगा था कि कहीं मुनिराज ने मुझे माल छुपाते हुए देख तो नहीं लिया और जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि इन्होंने

आवरण पृष्ठ इसी कहानी के आधार से बनाया गया है।

मुझे नहीं देखा तो वह आश्वस्त हो जाता है और यह विचारकर कि संतों के समागम से खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। वह मुनिराज से कह उठता है- हे वनदेवता ! आपने मुझे पापों के त्याग का उपदेश दिया यह तो मैं नहीं कर पाऊँगा, ऐसा करो आप मुझे कोई और नियम दे दो...।

मुनिराज उसकी पात्रता जान उसे एक नियम देते हैं-

1. **अनजाना फल नहीं खाना। रथग्रीव को यह नियम बहुत सरल लगता है और वह मुनिराज से क्रमशः दो और नियम भी ले लेता है।**
2. **अनजाने स्थान पर एकदम से नहीं बैठना।**
3. **कभी तीव्र क्रोध आये तो पहले तीन कदम पीछे हटना।**

रथग्रीव इन तीनों नियमों को लेकर अपने घर की ओर चल पड़ता है। वह चोरी के कारण कई दिनों से घर नहीं गया था लेकिन आज उसे अपनी पत्नी की याद आने लगी थी। उसने चोरी किये हुए गहनों में से कुछ अच्छे-अच्छे छाँट कर अपनी पत्नी के लिए जेबों में रख लिये थे।

रथग्रीव जंगल से बाहर निकल रहा था इतने में उसे बहुत जोरों से भूख लग जाती हैं। वह आस-पास देखता है कि खाने को कुछ मिल जावें। वहीं पास में एक पेड़ पर लटकते हुए पके फल दिखाई देते हैं। वह दौड़कर वृक्ष के समीप जाता है और जल्दी-जल्दी दो-चार फल तोड़कर जैसे ही खाने को होता है; उसे मुनिराज द्वारा दी गई प्रतिज्ञा याद आ जाती है **कि 'अनजाना फल नहीं खाना।'** वह अपने चारों और निगाह डालता है तो देखता है वहाँ अनेक झूठे फल पड़े हैं और अनेक गिलहरी, चिड़िया मृत पड़ी है वह समझ जाता

है कि ये फल अवश्य विषैले हैं। उसे मुनिराज का बहुत बहुमान आता है कि आज उनके कारण मेरी जान बच गयी। वह आगे बढ़ता है और गाँव की सीमा प्रारम्भ होते ही उसे एक सराय दिखती है। वह वहाँ पर रुककर पेटभर भोजन करता है और जब पैसे चुकाने के लिए जेब में हाथ डालता है तो सराय का मालिक ताड़ जाता है कि इसके पास बहुत रुपया है और वह उसे अपने फन्दे में फँसाने के लिए कपट से बड़ी मीठी-मीठी बातें करता है।

भैया ! बड़े थके दिखाई देते हो, अभी भोजन किया है, थोड़ा विश्राम कर लो, फिर निकल जाना। रथग्रीव थका हुआ तो था ही; अतः विश्राम के लिए रुक जाता है। सराय का मालिक उसे एक सजे-धजे सुन्दर कक्ष में ले जाता है और कहता है आप निश्चिन्त होकर यहाँ विश्राम करें। वह अन्दर से दरवाजा लगाकर जैसे ही सोने के लिए पलंग में बैठने को होता है, उसे मुनिराज के द्वारा दी गई दूसरी प्रतिज्ञा याद आ जाती है कि **'अनजाने स्थान पर नहीं बैठना पहले जाँच लेना।'** वह जैसे ही पलंग की चादर हटाता है तो क्या देखता है? उस पलंग में निवार ही नहीं थी और पलंग के नीचे गहरा गड्ढा था। रथग्रीव सराय के मालिक की चाल ताड़ जाता है, उसे मुनिराज का पुनः बहुत बहुमान आता है कि आज वे न मिले होते तो मेरा क्या होता ? रथग्रीव वहाँ से जल्दी निकलने के लिए साधन ढूँढता है उस कमरे में एक छोटा सा रोशनदान था, वह उसी से बाहर निकल जाता है।

रथग्रीव अब तेजी से अपने गाँव की ओर चलता है, लेकिन पहुँचते-पहुँचते उसे अर्द्धरात्रि हो जाती है। वह दरवाजा न खटखटाकर खिड़की के सहारे सीधे अपनी पत्नी के कक्ष में प्रवेश कर जाता है। लेकिन वहाँ का दृश्य देख उसे साँप सूंघ जाता है। वह देखता है उसकी पत्नी के पास कोई सोया हुआ है यह देख उसे तीव्र क्रोध आता है। वह

अपनी पत्नी के कुशील रूप आचरण का विचार कर उसे मारने के लिए कटार निकाल लेता है। लेकिन तभी उसे मुनिराज के द्वारा प्रदत्त तीसरी प्रतिज्ञा याद आ जाती है और **'वह तीन कदम पीछे की ओर जाता है'** वहाँ उसका पैर एक बड़े बरतन से टकरा जाता है। तेज आवाज़ सुन उसकी पत्नी व पास में सोई हुई रथग्रीव की बहन जाग जाती है। उसके हाथ में इस तरह कटार देख दोनों भयभीत हो जाती हैं और कारण पूछती है। रथग्रीव कटार फेंक देता है और दोनों को गले लगा लेता है। फिर अपनी पत्नी व बहन को सब घटना सुनाता है कि आज मुनिराज के कारण ही मेरी व तुम दोनों की जान बची।

रथग्रीव कहता है- मुनिराज तो मुझे बड़ी उत्तम शिक्षा दे रहे थे। लेकिन मैंने वह ग्रहण न कर ये छोटे-छोटे नियम लिये। लेकिन उनके दिये ये नियम भी जब मेरे लिये इतने कल्याणकारी हैं तो फिर उनकी वे शिक्षायें कितनी अधिक उपकारी होंगी।

रथग्रीव का मन मुनिराज से पुनः मिलने के लिए आतुर हो जाता है। पत्नी व बहन भी साथ चलने की जिद करती हैं। रथग्रीव मार्ग में चला जा रहा है और विचारता है कि आज के बाद कभी चोरी नहीं करूँगा। जैसे ही वह मुनिराज के निकट पहुँचता है, उन्हें बारम्बार विनय से प्रणाम करता है और सारा वृतांत बताता है।

मुनिराज भी तीनों प्राणियों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। रथग्रीव इस उपदेश को ग्रहण कर मुनिदीक्षा धारण करता है व उसकी पत्नी व बहन भी आर्यिका संघ में जाकर आर्यिका के व्रत धारण करती है। अहो ! छोटे-छोटे नियम भी जीव के उत्थान में निमित्त बन जाते हैं। कहा भी है-

घुटने-घुटने चलते-चलते, पाँव खड़े हो जाते हैं।
छोटे-छोटे नियम सफलकर बड़े-बड़े पा जाते हैं।।

2 संस्कारों का बल
(लघु नाटिका)

सूत्रधार - ''मैं जीव हूँ मुझमें ज्ञान है, मैं ज्ञान से जानता हूँ। शरीर अजीव है शरीर में ज्ञान नहीं है शरीर कुछ भी नहीं जानता। मेरा आत्मा कभी नहीं मरता, मैं अजर-अमर-अविनाशी तत्त्व हूँ।'' ऐसे पाठशाला के संस्कारों से संस्कारित, एक बालक के साथ घटित सत्य घटना पर आधारित यह लघु नाटिका है।

एक संपन्न जैन परिवार के दस वर्षीय बालक को डाकू अपहरण करके ले जाते हैं। देखते हैं आगे क्या होता है-

सरदार - कहाँ है वो बच्चा ! शेरा जरा उसे यहाँ तो लाना।

शेरा - सरदार ! बच्चा नीचे तहखाने (कालकोठरी) में बंद है अभी लाता हूँ बहुत परेशान कर रखा है न कुछ खाता है न पीता है, कोई मंत्र पढ़ते रहता है, यदि मर गया तो हमें एक भी रुपया नहीं मिलेगा।

सरदार - क्यों नहीं खाता-पीता ?

शेरा - सरदार ! वो कहता है **ये पानी अनछना है मैं नहीं पीता, ये भोजन अशुद्ध है मैं नहीं खाता, पता नहीं बहुत अटपटी बातें करता है।** अभी उसे लेकर आता हूँ।

(शेरा बच्चे को ढकेलते हुए लेकर आता है, कहता है - चल तुझे सरदार ने बुलाया है, चल,। बच्चे के हाथ बँधे हैं व आँखों पर पट्टी बँधी हुई है।)

सरदार - (माथे पर बंदूक लगाकर कहेगा।) क्यों रे ! बहुत परेशान कर रखा है दो दिन पूरे हो गये, तेरे पिता ने अभी तक रकम नहीं पहुँचायी। यदि आज रकम नहीं आई तो तुझे गोली से उड़ा देंगे।

बच्चा - मार दो ! मार डालो ! **मैं मरने से नहीं डरता, तुम मेरे शरीर को ही मार सकते हो, मेरी आत्मा को नहीं।**

सरदार – (हाथ से बंदूक गिर जायेगी) क्या कहा, मेरे शरीर को मार सकते हो, मेरी आत्मा को नहीं। बच्चे तूने ये आत्मा-परमात्मा की बड़ी-बड़ी बातें कहाँ से सीखी ?

बच्चा – मेरे मन्दिर में पाठशाला लगती है वहाँ हमें ऐसी बातें सिखायी जाती हैं। तुम भी चलो मेरी पाठशाला, ये हिंसा-झूठ-चोरी अपहरण, डाका डालना भूल जाओगे।

सरदार – बच्चा ! तू तो बड़ी अच्छी बातें करता है, **तेरे जैसे बालक को पकड़कर हमने बहुत बड़ी गलती की;** चल, तुझे हम तेरे घर पहुँचा देते हैं।

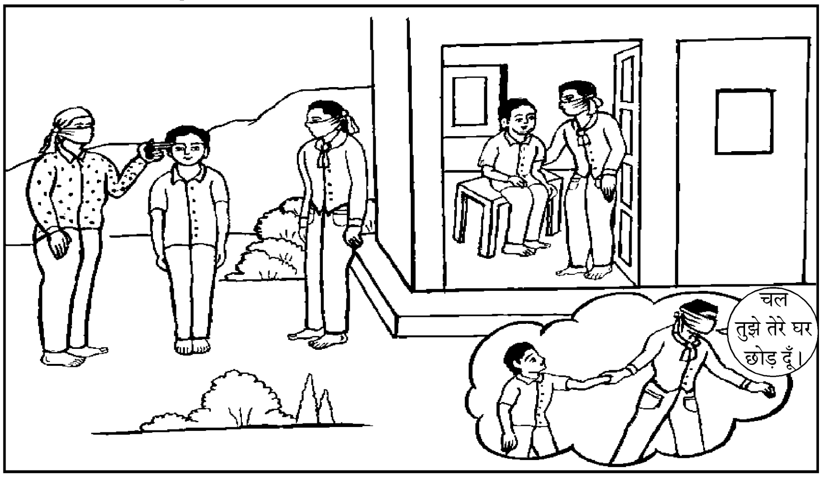

सूत्रधार – और डाकुओं का हृदय परिवर्तन हो जाता है। आप मानो या न मानो, रात के दो बजे घने अन्धकार में डाकुओं का सरदार वेष बदलकर स्वयं उसे उसके घर छोड़ने आया। घर के कुछ दूर उसने बच्चे को छोड़ दिया और जबतक बच्चा अपने घर में प्रवेश नहीं कर गया, वहीं खड़ा रहा। **आप भी अपने बच्चों की सुरक्षा चाहते हैं कि इसभव में और परभव में वे सुरक्षित रहें, सुखी रहें तो उन्हें पाठशाला अवश्य भेजें।** ।। पटाक्षेप ।।

3 पर्यायमूढ़ जीव
(लघु नाटिका)

पात्र

1. लालाजी - करीब 50 बरस के अधेड़ व्यक्ति

2. साधु बाबा 3. बैल 4. कुत्ता 5. मेंढक

सूत्रधार - एक थे लालाजी, अधेड़ उम्र के, एक छोटी-सी पंसारी की दुकान के मालिक, दिनभर छोटा-मोटा सौदा नापते थक जाते तो कह उठते - इस जीवन से तो मौत अच्छी, भगवान स्वर्ग में उठा लें और ऐसा वे दिनभर में हजार बार तो कह ही देते। देखते हैं लालाजी सिर्फ कहते हैं या वास्तव में स्वर्गवासी होना चाहते हैं।

लालाजी - (स्वगत ही) रोज का यही धन्धा, सुबह पाँच बजे से दुकान खोलो रात को बारह बजे बंद करो, अब ग्राहक कितने आते हैं ये बात अलग है, ऐसे जीवन से तो मौत भली, हे भगवान ! स्वर्ग में उठा लें।

सूत्रधार - उसी समय एक साधु बाबा वहाँ से निकलते हैं और लालाजी के ये शब्द उनके कान में पड़ते हैं तो वे लाला को दुखी देख उसकी सहायता को आते हैं।

लालाजी - प्रणाम! साधुबाबा।

साधुबाबा - लाला बहुत दुखी हो, यदि तुम कहो तो तुम्हें स्वर्ग ले चलूँ, मेरे पास एक विद्या है, चलता है तो चल, इस दुःख से छुटकारा मिल जायेगा।

लालाजी - बहुत दयावान हो बाबा, बहुत दयालु हो; परन्तु...परन्तु मैं अभी कैसे जा सकता हूँ? उम्र हो गई, लेकिन अभी तक कोई सन्तान

नहीं हुई। सन्तान हो जाये तो बस वैसे ही तुरन्त स्वर्ग चलूँगा।

साधुबाबा - ठीक है लाला, अपना वादा याद रखना।

सूत्रधार - और अभी साधुबाबा चले जाते हैं, कुछ वर्ष बाद लाला के दो बेटे हो जाते हैं, साधु बाबा पुनः आते हैं।

साधुबाबा - कहो लाला ! अब तो सन्तान हो गयी, चलो अब स्वर्ग ले चलूँ ?

लालाजी - बहुत दयावान हो बाबा, बहुत दयालु हो; लेकिन

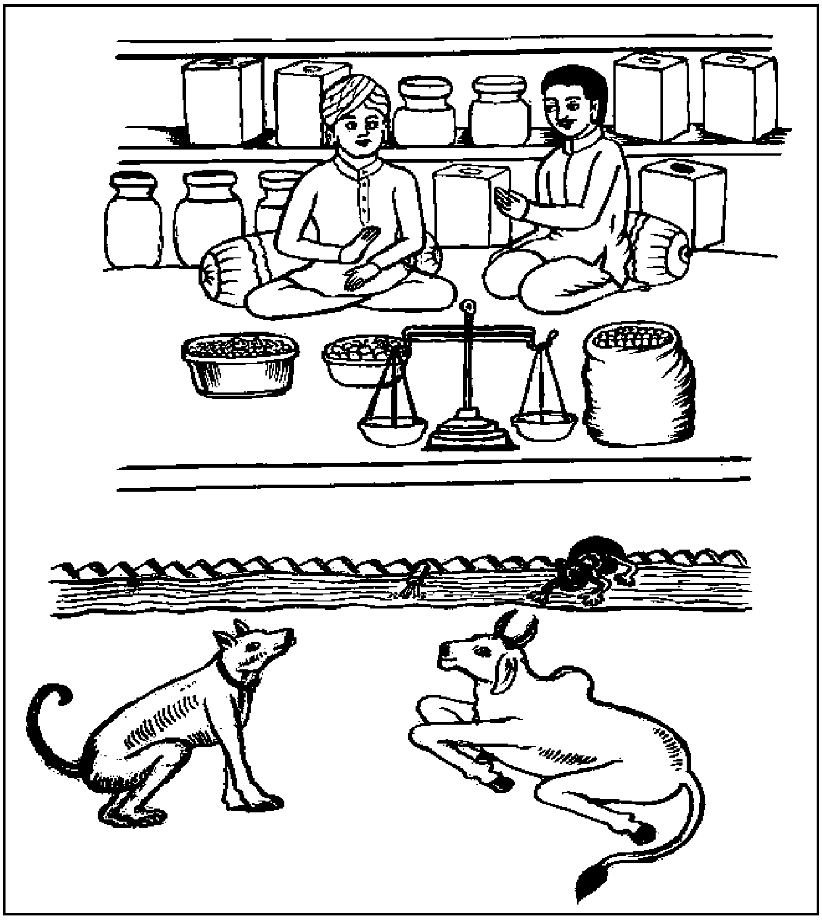

अभी कैसे जा सकता हूँ। सन्तान तो हो गई लेकिन अभी वह किसी योग्य नहीं, बस लड़के जरा बड़े हो जायें, फिर आना, मैं अवश्य चलूँगा।

सूत्रधार – लड़के भी बड़े हो जाते हैं साधु बाबा पुनः आते हैं लेकिन लालाजी को दुकान से नदारद पाते हैं। लड़कों से पूछते हैं तो वे कहते हैं उनका तो देहान्त हो गया। साधुबाबा अपने योगबल से देखते हैं कि लाला मर कर कहाँ गया – तो क्या देखते हैं वह मरकर बैल हुआ है और वहीं दुकान के बाहर बँधा है।

साधुबाबा – (बैल के पास जाकर)– लाला से बैल हो गये, चल अब ले चलूँ स्वर्ग ?

बैल – (ना में सिर हिलाता है और कहता है) – बहुत दयावान हो बाबा, दयालु हो; लेकिन अभी कैसे चलूँ, बच्चे अभी नासमझ हैं, मैं चला गया तो दूसरा बैल ले आयेंगे और फिर मैं जितनी अच्छी रीति से बोझा उठा लेता हूँ, दूसरा क्यों उठायेगा? मेरे बच्चों का नुकसान होगा, इसलिए थोड़ा और ठहर जाओ, फिर मैं चलूँगा स्वर्ग।

सूत्रधार – पाँच वर्ष व्यतीत हो जाते हैं साधु बाबा पुनः आते हैं तो देखते हैं दुकान के सामने अब बैल भी नहीं है उसके स्थान पर एक कुत्ता खड़ा है। साधु इधर-उधर पूछता है कि बैल कहाँ गया ? तो पता चला कि बोझा ढोते-ढोते मर गया। साधु पुनः अपने योगबल से उसे ढूँढते हैं तो देखते हैं कि बैल मरकर कुत्ता हुआ है और घर के द्वार पर बैठा है।

साधुबाबा– लाला ! मरकर तू बैल हुआ, अब कुत्ता बन गया, क्या गति हो गई तेरी; चल अब तुझे स्वर्ग ले चलूँ।

कुत्ता – बहुत दयावान हो बाबा, बहुत दयालु हो; लेकिन अभी कैसे चलूँ ? देखते नहीं, मेरे बेटों ने कितना धन कमा लिया है, बहुएँ

कीमती जेवरात पहनती हैं कोई डाकू चोर आ गये तो? इसलिए चौकीदारी करता रहता हूँ इसलिए अभी ठहर जाओ, कुछ समय बाद आना, फिर मैं चलूँगा स्वर्ग।

सूत्रधार – और साधुबाबा पुनः चले जाते हैं एक बरस बाद जब वापिस आते हैं तो क्या देखते हैं कुत्ता भी मर गया और वह मरकर अपने घर के सामने वाली नाली में मेंढक बना है।

साधुबाबा – देखो लाला ! क्या इससे भी बड़ी दुर्गति होगी, तुम कहाँ से कहाँ पहुँच गये, इस गंदी नाली के मेंढक बन गये, अब भी मेरी बात मानो। आओ तुम्हें स्वर्ग ले चलूँ।

मेंढक – (गुस्से में टर्राकर) – चला जा यहाँ से, अरे जल्दी जा, जाता है कि नहीं, नहीं तो इसी नाली के गंदे पानी में उछल-उछल कर तेरे कपड़े गन्दे कर दूँगा। क्या एक मैं ही रह गया हूँ स्वर्ग जाने के लिए ? और क्या मर गये हैं उनको ले जा, मुझे यहीं पड़ा रहने दे। (प्यार से) यहाँ पोते-पोतियों को आते-जाते देख जो सुख मिलता है, वह स्वर्ग में कहाँ ? और स्वर्ग में क्या तेरा मुख देखा करूँगा।

इससे यह सिद्धांत प्रतिफलित होता है कि अज्ञानी पर्याय मूढ़ होने से किसी भी पर्याय में रहे, वह उसे ही अपना सर्वस्व मानता है। अतः अनंत कष्टों में रहकर भी उसे नहीं छोड़ना चाहता। **वह असमानजातीय प्राप्त पर्याय में इतनी तन्मयता अर्थात् एकत्व स्थापित कर लेता है कि उसे उसके अतिरिक्त भी 'मैं कुछ और हूँ' – यह भासित ही नहीं होता,** फलस्वरूप वह कभी भी मुक्ति को प्राप्त नहीं करता।

अतः हमें यह समझकर पर्याय मूढ़ता छोड़कर अपने त्रिकाली ध्रुव स्वभाव में अपनापन स्थापित कर सच्चे सुख का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। ।। पटाक्षेप ।।

4 हर विवाद का हल हो सकता, स्याद्वाद के द्वारा

(लघु नाटिका)

पात्र – छह अंधे, एक विद्वान, एक हाथी

अन्धा नं. 1 – भाइयो ! सुना है गाँव में हाथी आया है, कहते हैं बहुत बड़ा जानवर होता है चलो चलकर देखते हैं।

पाँचों अन्धे – (समवेत स्वर में) हाँ–हाँ भाई चलो चलकर देखते हैं। (स्टेज पर एक टेबिल पर एक नकली हाथी रखा होगा, वहीं अर्द्धचन्द्राकार बनाते हुए छहों अंधे खड़े हो जायेंगे और एक-एक अंग को छूकर अपनी राय प्रगट करेंगे।)

अन्धा नं. 1 – (हाथी की पीठ को छूकर) अरे भाईयो ! हाथी तो दीवाल जैसा है।

अन्धा नं. 2 – अच्छा ! दीवाल जैसा है ? मैं भी देखूँ (हाथी के पैर को छूकर) नहीं–नहीं भाई, हाथी तो खम्बे जैसा है।

अन्धा नं. 3 – (हाथी की पूँछ को छूकर) अरे भाईयो ! न तो हाथी दीवाल जैसा है न खम्बे जैसा, हाथी तो रस्सी जैसा है।

अन्धा नं. 4 – (हाथी की सूँड को छूकर) अरे आखिर रहोगे अन्धे ही! दिखता नहीं, हाथी तो कदलीवृक्ष (केले के पेड़ का तना) जैसा है।

अन्धा नं. 5 – (हाथी के कान को छूकर) मित्रो ! हाथी न तो दीवाल जैसा है न खम्बे जैसा, न रस्सी जैसा, न कदलीवृक्ष जैसा, यह तो सूपे जैसा है।

अन्धा नं. 6 – (हाथी के बाहर निकले दाँत को छूकर) भाईयो, तुम सब ही गलत कहते हो, हाथी तो तलवार जैसा है।

(सभी एक साथ अपनी-अपनी बात रखेंगे) – दीवाल जैसा है, खम्बे

जैसा ही है, रस्सी जैसा है, कदलीवृक्ष जैसा, सूप जैसा, तलवार जैसा...। (आपस में झगड़े जैसी स्थिति हो जाती है।)

विद्वान का प्रवेश – क्या बात है भाईयो ! तुम लोग किस बात पर झगड़ रहे हो ? (सभी शान्त हो जाते हैं और फिर सभी अपनी-अपनी बात कहते हैं।)

विद्वान – ठीक है, अब सभी मेरी बात ध्यान से सुनो, तुम सब हाथी का जो स्वरूप बता रहे हो वह किसी अपेक्षा से तो सत्य है, लेकिन सर्वथा हाथी ऐसा नहीं है। हाथी **पीठ की अपेक्षा** तो दीवाल जैसा है, लेकिन पूरा हाथी, दीवाल जैसा नहीं है; **पैरों की अपेक्षा** देखें तो खम्बे जैसा है, **पूँछ की अपेक्षा** देखें तो रस्सी जैसा है, **सूँड की अपेक्षा** वही हाथी कदलीवृक्ष जैसा है और उसके **कानों की अपेक्षा** सूप जैसा है और अपने **दाँतों की अपेक्षा** तलवार जैसा है। **हाथी का ऐसा निर्दोष स्वरूप है,** समझ में आया ?

छहों समवेत स्वर में – हाँ-हाँ पण्डितजी, समझ में आ गया कि हाथी ऐसा है। (विद्वान द्वारा गाथा पाठ)

परमागमस्य जीवं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनय विलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्।।

– श्री पुरुषार्थसिद्धिउपायजी

अर्थ– जन्मान्ध पुरुषों के हस्तिविधान का निषेध करनेवाला, समस्त नयों से शोभायमान अर्थात् प्रकाशित (सापेक्ष कथन द्वारा) वस्तुस्वभाव का विरोध दूर करनेवाला, उत्कृष्ट जैनसिद्धान्त का जीवभूत अनेकान्त जयवन्त वर्ते, उसे मैं नमस्कार करता हूँ।

''हर विवाद का हल हो सकता, स्याद्वाद के द्वारा''
(इसप्रकार गाते हुए सभी स्टेज से चले जाते हैं) ।। पटाक्षेप।।

5 भरतजी घर में ही वैरागी
(लघु नाटिका)

पात्र – भरत चक्रवर्ती, नागरिक, सैनिक

नागरिक – (स्वगत ही....) लोग कहते हैं ''भरतजी घर में ही वैरागी'' यह कैसे हो सकता है? छह खण्ड के जो अधिपति हैं, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा जिनके चरणों में झुकते हैं। नवनिधि-चौदह रत्न के जो स्वामी हैं, अरे छियानवे हजार तो जिनकी रानियाँ है। इतने सब राजवैभव, विषय-भोगों के बीच में भी रहकर कोई वैरागी कैसे हो सकता है ? परन्तु यह बात मैं किससे पूछूँ, चलो स्वयं महाराज से ही पूछता हूँ। (प्रस्थान)

(भरतजी दरबार में सिंहासन पर विराजमान हैं वहाँ एक सैनिक हाथ में तलवार लिए एक ओर खड़ा है। नागरिक का प्रवेश।)

नागरिक – महाराज की जय हो!

भरतजी – क्या बात है नागरिक ! आज किस कारण से तुम्हारा दरबार में आगमन हुआ ?

नागरिक – महाराज ! मुझे एक शंका है। आप उसका समाधान करने की कृपा करें।

भरतजी – शंका है, वह तुम निर्भय होकर कहो, हम उसका समाधान करने का प्रयत्न अवश्य करेंगे।

नागरिक – महाराज ! सभी कहते हैं ''भरत जी घर में ही वैरागी'' लेकिन आप तो इतने वैभव में रहते हैं, फिर वैरागी कैसे ?

भरतजी – नागरिक ! तुम्हारी शंका उचित ही है। हम अवश्य उसका समाधान करेंगे, लेकिन लगता है तुम हमारे राज दरबार में पहली

बार आये हो, क्या तुम हमारा राजमहल घूमना पसन्द करोगे।

नागरिक – हाँ महाराज ! मैं पहली बार ही आया हूँ। मैं अवश्य ही राजमहल घूमना चाहूँगा।

भरतजी – ठीक है नागरिक !

नागरिक – जी महाराज !

भरतजी – सैनिक ! इस नागरिक को अपने साथ ले जाओ, इसे हमारा सारा राजमहल, बाग-बगीचे, खजाने सब दिखाकर लाओ; लेकिन नागरिक ! एक शर्त है तुम्हारे हाथ में एक तेल का कटोरा रहेगा, ये सैनिक तलवार लेकर तुम्हारे साथ जायेगा, यदि कटोरे में से तेल की एक भी बूँद गिरी, तो यह तुम्हारा सिर, धड़ से अलग कर देगा। (उन्होंने यह बात सैनिक को पहले ही बता दी थी कि मात्र भय दिखाना है, मारना नहीं है। **इसीप्रकार आचार्य कहते हैं कि यदि हमें चार गति के दुखों से भय लगेगा, तो हमारा मन भी कहीं नहीं लगेगा, उनसे निरन्तर निकलने का भाव रहेगा।)**

नागरिक – (काँपते हुए) जी ऽऽऽ महाराज!

सैनिक – (नागरिक के हाथ में कटोरा देते हुए) चलो नागरिक !

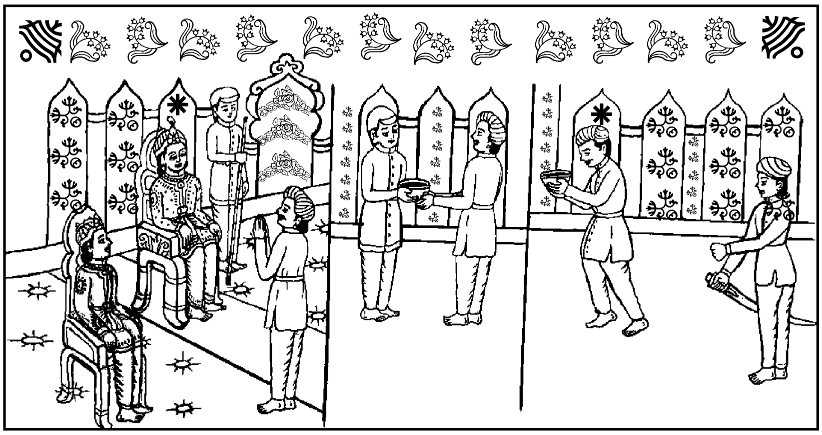

(आगे-आगे कटोरा लेकर नागरिक एवं पीछे-पीछे तलवार लेकर सैनिक चलेगा, स्टेज का एक चक्कर लगाकर वापस महाराज के सामने आ जायेंगे।)

सैनिक - महाराज की जय हो!

भरतजी - कहो नागरिक ! सब देख आये।

नागरिक - नहीं महाराज ! मैंने कुछ भी नहीं देखा, कुछ भी नहीं देखा।

भरतजी - (रोषपूर्वक, तेज आवाज में) सैनिक ! तुमने नागरिक को क्या सब नहीं दिखाया ?

सैनिक - महाराज ! मैंने तो इसे राजमहल, बाग-बगीचे, रानी जी के महल, खजाने सब दिखाये; फिर पता नहीं यह ऐसा क्यों कह रहा है ?

नागरिक - महाराज ! सैनिक का कोई दोष नहीं, उसने तो मुझे सब दिखाया, मैंने ही नहीं देखा; **क्योंकि मेरी दृष्टि तो इस तेल पर थी,** यदि एक बूँद भी गिरती तो मृत्यु निश्चित थी।

भरतजी - नागरिक ! अब तो तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा। सब कुछ घूमने के बाद भी तुम्हारी दृष्टि सब पर नहीं, मात्र तेल पर थी। इसी प्रकार **हमें भी यह सम्पूर्ण वैभव एवं विलासता के साधन सैनिक की भाँति कर्म दिखाता है,** पर हम तो इस वैभव में रहते हुए भी, इनमें नहीं रहते, इन्हें अपना नहीं मानते, हम तो अपने अखण्ड शाश्वत चैतन्य स्वरूप में रहते हैं, उसे ही अपना मानते हैं।

नागरिक - धन्य हो महाराज ! आप धन्य हो !! ऐसा कहकर वह ''भरतजी घर में ही वैरागी।'' गुनगनाते हुए चला जाता है।

।। पटाक्षेप ।।

6 वर्णीजी और शिकारी

(लघु नाटिका)

सूत्रधार – देश को स्वाधीनता मिलने से पूर्व की यह घटना है। बड़े वर्णीजी अर्थात् गणेशप्रसादजी एक बार ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। वहीं उनके सामने की बर्थ पर एक शिकारी बैठा हुआ था। दयालु हृदय वर्णीजी से नहीं रहा गया और उन्होंने उसे शिकार न करने की प्रेरणा दी। देखते हैं- आगे क्या हुआ।

वर्णीजी – भाई ! शिकार करना तो अच्छी बात नहीं, यह तो पाप है। ये मूक प्राणियों को मारते क्या तुम्हें दया नहीं आती ?

शिकारी – (झुंझलाते हुए) महात्मा ! आप लोगों में ये ही गलत बात है, जरा कोई मिला नहीं और लगे उपदेश देने। अरे ! शिकार न करें तो क्या भूखे मरें। अपने उपदेश को अपने पास रखो, मुझे नहीं आती समझ में -ये सब बातें।

वर्णीजी – भाई ! तुम तो बुरा मान गये, मैं तुम्हें भूखा रहने को नहीं कह रहा हूँ बस मैं तो यही कह रहा था ऐसी हिंसक आजीविका करने से तुम्हें बहुत पाप बंध होगा और फिर तुम्हें दुःख होगा। कोई अन्य काम धन्धा क्यों नहीं कर लेते?

शिकारी – चलो महात्मा ! हमारा तो जंगल आ गया, हम तो चलें शिकार की खोज में।

सूत्रधार – और शिकारी रास्ते में जहाँ घना जंगल मिला वहाँ ट्रेन से उतरकर चला गया। ठीक इस घटना के एक वर्ष बाद पुनः इसी बाँदकपुर स्टेशन पर वर्णीजी और शिकारी पुनः मिल जाते हैं। शिकारी जैसे ही वर्णीजी को देखता है, वह आकर उनके पैर पड़ता है।

वर्णीजी - कौन ? शिकारी भैया।

शिकारी - हाँ, महात्मा मैं ही हूँ।

वर्णीजी - भैया ! तुमने तो उस दिन हमारी बात मानने को मना कर दिया था, अब पैर क्यों पड़ रहे हो ?

शिकारी - महात्माजी ! हमने कब आपकी बात नहीं मानी, हमने तो उसी दिन से शिकार करना छोड़ दिया था।

वर्णीजी - भैया ! ये चमत्कार कैसे हुआ ?

शिकारी - महात्माजी ! बात ये हुई कि मैं उस दिन ट्रेन से उतरकर घनें वनों में शिकार की खोज में गया तो, लेकिन मुझे उस दिन एक भी शिकार नहीं मिला, मुझे लगा आपकी बद्दुआ लग गयी और मैं जब खाली हाथ अपने घर पहुँचा तो बहुत जोरों से भूख लग रही थी। पत्नी को कहा कि जा, दो कबूतर मार और पका। लेकिन पत्नी ने कबूतर मारने से मना कर दिया, उसने कहा मुझसे किसी का तड़पना नहीं देखा जाता। फिर मैंने पत्नी से कहा - रह भूखी ! मैं भी नहीं मारता। और महात्मा हम दोनों भूखे सो गये, मुझे नींद तो नहीं आ रही थी। रह-रह कर आपकी बात याद आ रही थी कि हिंसा नहीं

करना। पत्नी ने भी कहा- महात्मा सच ही तो कह रहे थे शिकार करना कोई अच्छी बात तो नहीं, कोई और काम-धन्धा करो।

वर्णीजी - अच्छा ! फिर क्या हुआ ?

शिकारी - महाराज ! मैं उस दिन से खेतों से ताजी सब्जियाँ लाकर गाँव में बेचने लगा। महात्मा ! आपकी बहुत कृपा रही, मेरे दिन फिर गये, घर का पक्का मकान बन गया, बच्चे स्कूल जाने लगे। महाराज ! मैंने नियम ले लिया कि मैं अब कभी भी शिकार नहीं करूँगा और न ही माँस-मदिरा, अण्डे का भक्षण करूँगा।

वर्णीजी - बहुत अच्छा भाई, बहुत अच्छा।

सूत्रधार - हम समझते हैं कौन पात्र है और कौन अपात्र ? किसे उपदेश दें और किसे नहीं दें। पर हमें यह घटना यह शिक्षा देती है कि बिना किसी स्वार्थ के भय रहित होकर सरलता से, हित की भावना से दिया गया उपदेश अपने स्व समय में अवश्य कारण बन ही जाता है। वर्णीजी द्वारा उज्ज्वल हृदय से दिया गया उपदेश आखिर शिकारी के हृदय परिवर्तन का कारण बन ही गया। ।। पटाक्षेप।।

''अहो, एक ही जीव, एक ही भव में एकबार नरक के कर्म बाँधता है, और फिर उस ही भव में तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का कर्म बाँधता है, देखो तो जरा जीव की परिणति की विचित्रता।''

इसप्रकार क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक ने अपने बारे में एक साथ दो बातें सुनी- १. आगामी भव में नरक जाना और २. उसके बाद के भव में तीर्थंकर बनना। 'नरक में जाना और तीर्थंकर होना' – दोनों बातें एक साथ सुनकर उसे कैसा लगा होगा ? खुशी हुई होगी ? या खेद हुआ होगा ? कहाँ हजारों वर्ष तक नरक के घोरातिघोर अत्यंत दु:ख की वेदना ! और कहाँ त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर पदवी ! नहीं। वे तो इनसे भिन्न कोई तीसरी अनुपम अभूतपूर्व वस्तु का अनुभव कर रहे थे।

क्या है यह तीसरी वस्तु ? यह है ज्ञानचेतना ! यह ज्ञानचेतना ना तो नरक के कर्मों को वेदती है, और ना ही तीर्थंकर प्रकृति के कर्म को वेदती है – दोनों कर्मों से भिन्न नैष्कर्म्य भाव से कर्मों से छूटकर परमशांति से मोक्षपंथ को साध रही है।

7 विपरीताभिनिवेश के नजारे

(लघु नाटिका)

पात्र- एक पत्रकार, चार समितियाँ (प्रत्येक के चार सदस्य)

पत्रकार - (मंच पर प्रवेश करता है, गले में कैमरा लटका हुआ है, हाथ में माइक है।) मैं एक पत्रकार हूँ मुझे आज एक अद्भुत समाचार मिला है इसी पृथ्वी में एक सदानंद नाम का नगर है 'यथा नाम तथा गुण' वहाँ सभी प्रकार का आनंद है, कहीं कोई कष्ट नहीं; रोग, मरी, दुर्भिक्ष का नाम तो दूर, सर्दी-गर्मी की भी जहाँ बाधा नहीं, वहाँ हमेशा सुरम्य वातावरण बना रहता है। समाज में छुआछूत, चोरी, दहेज, हिंसा, बलात्कार, बेरोजगारी आदि किसी भी तरह की कोई समस्या नहीं, परिवारों में भी कहीं कोई कलह नहीं, धन-दौलत की दृष्टि से भी सर्व प्रकार से सम्पन्न।

ऐसे नगर को देखने की तीव्र जिज्ञासा लिए हुए, इसकी एक एक्सक्लूसिव (स्पेशल) रिपोर्ट तैयार करने के लिए आज मैं वहाँ पहुँच गया हूँ ''जैसा सुना था वैसा ही पाया''

(इसी समय प्रत्येक समिति के सदस्य आपस में बातचीत करते हुए चिन्तित मुद्रा में कोई स्टेज की एक ओर से कोई दूसरी ओर से मंच पर इधर से उधर जायेंगे।)

(उन्हें देखकर ही पत्रकार मन ही मन सोचता है) कहता है - लेकिन यह क्या ? सदानंद नगर के नागरिकों के चेहरे से प्रसन्नता कोसों दूर। ये तो बड़े अशांत और परेशान दिखाई देते हैं, न जाने किस समस्या में उलझे हुए भागदौड़ में लगे हुए हैं; चलो पहले इन्हीं का इंटरव्यू लिया जाये।

नंबर एक समिति के सदस्यों से – जयजिनेन्द्र भाईसाहब, जयजिनेन्द्र।

समिति के सदस्य नं.1– (अचरज से देखते हुए) जयजिनेन्द्र ! कौन हैं आप ? आप सदानंद नगर के नागरिक तो दिखते नहीं।

पत्रकार – ठीक पहचाना ! मैं यहाँ का नागरिक नहीं, मैं तो दिल्ली से आया हूँ, पत्रकार हूँ; आप लोगों का इंटरव्यू लेना चाहता हूँ।

सदस्य नं.2 – भाईसाहब ! ये हमारे लीडर हैं, आप इनसे पूछ सकते हैं।

पत्रकार – अध्यक्ष महोदय, जरा अपने बारे में बताइये।

लीडर – देखिए पत्रकारजी हम सभी काक वर्ण परिवर्तन समिति के सदस्य हैं; ये जो कौआ है न, बोलता तो खराब है ही काँव, काँव, लेकिन काला भी है मनहूस कहीं का। तो हमारी समिति इसे काला से सफेद करने के कार्य में संलग्न है। हमारी समिति की स्थापना को करीब 800 वर्ष हो चुके हैं, इसके 8000 सदस्य हैं, हमारा एक-एक सदस्य प्रतिदिन अनेक कौओं को पकड़-पकड़ कर दूध में नहलाता है, एशियन पेंट के उजले - सफेद कलर से उसे पोतता है, इस कार्य में करीब हम 80 करोड़ रू. खर्च कर चुके हैं, हमें अपने खाने-पीने-सोने की चिंता नहीं।

पत्रकार – (धीमी आवाज़ में) तो सर जी ! आज तक कितने कौए सफेद हो चुके हैं ?

सदस्य नं. 4 – अभी तक तो एक भी कौआ नहीं हुआ, (तेज स्वर में) लेकिन हम अपने कार्य में पीछे नहीं हटेंगे, एक दिन हम सारे कौओं को सफेद करके ही रहेंगे।

बोलो भाईयो ! भारतमाता की जय .....

(समिति नं.1 के सदस्यों का प्रस्थान)

पत्रकार – कैसे लोग हैं कौओं को सफेद करने चले।

(दूसरी समिति के लोग वहाँ से आपस में बातचीत करते हुए निकलेंगे।)

अरे ! ये लोग कौन हैं ? किस उधेड़बुन में लगे हैं ? चलो पूछता हूँ (समिति के सदस्यों से) भाईसाहब ! आप लोग किस भाग-दौड़ में लगे हैं, जरा कुछ अपने बारे में बताएँगे ?

सदस्य नं.1 – भाईसाहब ! हम लोग नीम रस परिवर्तन समिति के सदस्य हैं, हमारी संस्था का उद्देश्य है – नीम का रस परिवर्तन करना। माना नीम बहुत उपयोगी है, लेकिन (मुँह बनाते हुए) होता है बहुत कड़वा, थू-थू, हम एक दिन इसे मीठा करके ही रहेंगे।

पत्रकार – भाईसाहब ! इसके लिए आप लोग क्या करते हैं?

सदस्य नं.2 – भाई ! तुम्हें क्या मालूम, हमारे यहाँ कोई शक्कर नहीं खाता, हम शक्कर को घोल-घोल कर, घोल-घोल कर नीम के पेड़ों में डालते हैं; हमारे सैकड़ों कार्यकर्ता, वैज्ञानिक सभी इस कार्य में जी-तोड़ मेहनत करते हैं, नये-नये उपाय करते हैं, हम हिम्मत नहीं हारेंगे, आमजनता के कल्याण के लिए यह महान कार्य अपने हाथ में लिया है। हम एक दिन सफल होकर ही रहेंगे। बोलो, इंकलाब जिन्दाबाद। (समिति के सदस्यों का प्रस्थान)

पत्रकार – बड़े मूढ़ लोग हैं, नीम को मीठा करने चले हैं, सफल होते नहीं और कहते हैं हम सफल होकर ही रहेंगे।

(तीसरी समिति के सदस्यों का वहाँ कुछ डिस्कस करते हुए रुक जाना) (स्वगत) अरे ! अब ये कौन-सी समिति के सदस्य हैं ? चलो इनसे भी मिलते हैं।

साहब ! आप लोग बड़े व्यस्त दिखाई देते हैं, आखिर आपका प्रोजेक्ट क्या है ?

समिति के सदस्य – हम सब सूर्योदय दिशा परिवर्तन समिति के सदस्य हैं। अरे ! सूर्य तो रोज ही उगता है लेकिन मात्र पूर्वदिशा को ही उसके उगने का सौभाग्य क्यों मिले? ये तो अन्याय है उसे सभी दिशाओं में बदल-बदल कर एक-एक सप्ताह उगना चाहिए, सभी दिशाओं को समान अधिकार मिले, इसके लिए हमारी समिति रात-दिन मेहनत कर रही है। हमने आज तक अनेकों रॉकेट आकाश में भेजे हैं, हमारी भारी धनहानि भी हुई और जनहानि भी, लेकिन हमारा उत्साह शिथिल नहीं हुआ, हम अपना सर्वस्व समर्पण करके भी सूर्योदय की दिशा परिवर्तन करके ही रहेंगे, एक दिन सफलता हमारे कदम चूमेंगी। (प्रस्थान)

पत्रकार – (माथा ठोकता हुआ) हे भगवान ! मिथ्यात्व की अजब निराली दुनिया है। (इतने में चौथी समिति के सदस्यों का आगमन)

पत्रकार – मान्यवर ! आप लोग क्या करते हैं, जरा अपने विषय में तो बताइये ?

समिति के सदस्य – (हाथ-पैर लम्बे-लम्बे फैलाते हुए) हम लोग जल लोहतारण समिति के सदस्य हैं, हमारी समिति का पावन उद्देश्य है लोहे को जल में तैराना। मात्र लकड़ी ही जल में तैरे ये तो पार्सलिटी है, हम इस पक्षपात को दूर करके ही रहेंगे, हमारी समिति सबसे प्राचीन है। इसके लिए हमारे कार्यकर्त्ताओं ने अपने प्राण तक न्यौछावर कर दिये, वे लोहे की नाव बना-बना कर उसमें बैठ नदी में उतरे और शहीद हो गये; लेकिन एक दिन हम सफल होकर ही रहेंगे, जब तक हम अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर लेते, तब तक चैन की सांस नहीं लेंगे-

बोलो साथियो ! इंकलाब जिन्दाबाद, इंकलाब जिन्दाबाद ...

पत्रकार – तो आपने देखा विपरीताभिनिवेश के नजारे।

यह आत्मा तो सदा सदानंद नगर जैसा सुखस्वरूप है, लेकिन अपनी मिथ्या मान्यताओं के कारण वर्तमान में दुःखी रहता है।

जैसे कौआ कभी भी सफेद नहीं होता, **वैसे ही शरीर कभी चेतन नहीं होता। लेकिन शरीर को मैं मानकर सारी जिन्दगी जीता है पर इसे अपना बनाने में सफल नहीं हो पाता।**

जैसे नीम, दूध-शक्कर के संयोग से कभी भी मीठा नहीं होता। **वैसे ही धन-वैभव, पद प्रतिष्ठा आदि संयोगों के बल पर कोई सुखी नहीं होता; लेकिन अपनी विपरीत मान्यता के कारण असफल होकर भी उन्हीं में जिन्दगी गवां देता है। जिस धन-परिवार, कुटुम्ब को जुटाता है उसे छोड़कर खुद रिफर (मर) हो जाता है।**

जैसे सूर्य कभी पश्चिम से नहीं निकल सकता, **वैसे ही परद्रव्य हमें कभी भी सुख-दुख नहीं देते हम अपनी मिथ्या मान्यता से ही उनमें कभी सुख की कल्पना करते हैं तो कभी दुख की। यदि हम अपनी मिथ्या मान्यता त्याग दे तो स्वयं तो सुखस्वरूप हैं ही।**

जैसे लोहे को कभी भी जल में नहीं तैराया जा सकता वह डूब ही जाता है, **वैसे ही परद्रव्य का परिणमन कभी भी अपने अनुसार नहीं किया जा सकता, फिर भी हम स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार, धन, सम्पदा समस्त परद्रव्यों का परिणमन अपने अनुसार करने की अनर्थक कौशिश कर दुखी होते रहते हैं।**

यह सब हमारी पर में कर्तृत्व-भोक्तृत्व की विपरीत मान्यता का ही दुष्पणिाम है। अत: हमें तत्त्वाभ्यास के बल से यथार्थ वस्तु स्वरूप को जानकर पर में कर्तृत्व-भोक्तृत्व का भाव छोड़कर सहज अकर्तृत्व ज्ञाताभाव रूप रहना चाहिए। ।। पटाक्षेप ।।

8 कर भला तो हो भला

चंद्रपुर नामक कस्बे में रहने वाले सेठ हरिराम का छोटा-सा परिवार है। परिवार में पत्नी कंचन व एक दस वर्ष का पुत्र हीरा है। लेकिन अचानक सेठ हरिराम को व्यापार में घाटा लग जाता है, नौबत यहाँ तक आ जाती है कि उसकी पूर्ति के लिए उन्हें अपनी दुकान, पत्नी के गहने भी (चल-अचल सम्पत्ति) बेचने पड़ते हैं। घर में अनाज-पानी पहले का भरा रखा था, सो कुछ दिन तो काम चल गया; लेकिन फिर चने फाँकने की नौबत आ जाती है। सेठ हरिराम परेशान रहने लगते हैं और दूसरों से सहायता की आशा रखने लगते हैं, लेकिन ये नहीं सोचा कि कभी भी किसी को सहायता की आवश्यकता पड़ती थी तो वे हमेशा वहाँ से धीरे से खिसक जाते थे। परोपकार के कार्यों से भी सदैव दूर रहते थे, फिर उनकी सहायता भला कौन करता?

पत्नी कंचन ने समझाया कि नये सिरे से कोई भी कार्य करो। लेकिन सेठ हरिराम पहले अपने नगर के प्रतिष्ठित व्यापारी थे, इसलिए उन्हें छोटा-मोटा काम करने में शरम लगती, वे सोचते- लोग क्या कहेंगे।

जबकि, **क्या कहेंगे लोग - यह है सबसे बड़ा रोग। कार्य कोई भी छोटा-बड़ा नहीं होता, न्याय-नीति पूर्वक किया गया छोटा व्यापार भी बड़ा है** और अन्याय-अनीति, भ्रष्टाचारी पूर्वक किया गया बड़ा व्यापार, जिसमें करोड़ों की कमाई हो वह भी निम्न कोटि का कार्य है।

एक रात्रि शयन करते हुए सेठ हरिराम को चिन्ता ने घेर लिया, उन्होंने विचारा- क्यों न किसी अन्य स्थान पर जाकर कुछ काम किया

जाये, ताकि पत्नी व बच्चे का भरण-पोषण हो सके। वे जानते थे कि यदि कंचन को कहकर जाऊँगा तो वह भी साथ जाने की जिद करेगी, इसलिए उन्होंने एक पत्र में सारी बात लिख दी कि अधिक से अधिक 12 वर्ष में तो अवश्य आ जाऊँगा, ऐसा लिख कर कुछ आवश्यक सामान उठा एकबार जीभर पुत्र हीरा का मुख देखकर अर्द्धरात्रि में ही घर से निकल पड़े।

अनेक गाँवों-शहरों में कार्य की खोज की, फिर धीरे-धीरे व्यापार प्रारम्भ किया, लाभ भी होने लगा तो लोभ ने घेर लिया कि बस थोड़ा और कमा लूँ, बस थोड़ा और कमा लूँ और इसी थोड़े-थोड़े के चक्कर में बारह वर्ष पूरे हो गये। आज सेठ हरिराम के हर्ष की सीमा नहीं। वे आज वापिस अपने कस्बे चंद्रपुर को जा रहे हैं इस बीच उन्होंने बहुत धन कमाया, पत्नी व पुत्र के लिए अनेक कीमती उपहार लिये। उन्हें तो ऐसा लग रहा था कि पंख होते तो उड़कर अभी पहुँच जाता, लेकिन चंद्रपुर आने के पहिले ही पड़ौस का गाँव सूर्यपुर आते-आते उन्हें रात हो गयी, उन्होंने सोचा रात्रि में लुट जाने का डर है, अतः अब गमन करना ठीक नहीं और उन्होंने अपनी गाड़ी सूर्यपुर की धर्मशाला की ओर मोड़ दी।

यहाँ आज चंद्रपुर में सेठ हरिराम के उजाड़ पड़े घर में रौनक दिखाई दे रही है। माँ-बेटे को रात में नींद ही नहीं आई, दोनों सुबह जल्दी जाग गये, कंचन ने सारा घर लीप-पोत कर तैयार कर रखा है। सेठ हरिराम के परदेस जाने के बाद उसने घर में सिलाई का काम कर अपनी आजीविका चलाई, बेटे को पढ़ाया-लिखाया, उसे योग्य बनाया। बेटा हीरा 22 वर्ष का गबरू जवान हो गया है, वह भी बहुत खुश है कि आज पिताजी आ जायेंगे, अब सब कष्टों का अन्त हो जायेगा।

कंचन उसे बार-बार कह रही है बेटा ! भोजन का समय हो गया,

तुम जल्दी से भोजन कर लो, देखो आज तो तुम्हारे और तुम्हारे पिताजी के पसन्द का सारा भोजन बना है, फिर पिताजी आ जायेंगे तो सब बातों में व्यस्त हो जायेंगे; लेकिन हीरा ने तो एक ही रट लगाई है आज कुछ भी खाऊँगा-पीऊँगा तो बापू के साथ ही... और शाम हो गई लेकिन सेठ हरिराम घर नहीं पहुँच पाये।

हीरा - माँ ! मुझसे अब और धैर्य नहीं रखा जाता, मैं पिताजी को ढूँढने जाता हूँ।

कंचन - बेटा ! थोड़ा और रास्ता देख लो, तुम्हारे पिता वादे के पक्के हैं वे आते ही होंगे और फिर बेटा कोई पता-ठिकाना भी तो नहीं, आखिर तू कहाँ ढूँढने जायेगा ?

हीरा - माँ ! तुमने ही कहा था कि बापू ने लिखा था वे पश्चिम दिशा की ओर जा रहे हैं, मैं पश्चिम दिशा का एक-एक गाँव, शहर छानूँगा, लेकिन बापू को जल्दी वापिस लेकर आऊँगा।

कंचन - बेटा ! क्या तू बापू को इतने बरस बाद पहिचान पायेगा?

हीरा - माँ ! मैं बापू की यही पुरानी वाली तस्वीर साथ लेकर जाता हूँ। सबसे पहले पड़ौस के गाँव सूर्यपुर में खोज करूँगा, फिर ही आगे बढूँगा.....।

कंचन - ठीक है बेटा ! अपना ख्याल रखना, लेकिन तू कुछ खा-पी लेता तो अच्छा रहता, लेकिन तू भी पक्का जिद्दी है।

हीरा सूर्यपुर पहुँच कर अपने बापू की तस्वीर दिखा-दिखा कर लोगों से पूछता है लेकिन लोग 'ना' कहते जाते हैं और रात हो जाती है वह वहाँ से अन्य गाँव जाने के लिए वाहन तलाशता है लेकिन कोई साधन नहीं मिलता। उसने सोचा- रात धर्मशाला में रूक जाऊँ, फिर सुबह आगे बढूँगा और हीरा के पैर सूर्यपुर की धर्मशाला की ओर मुड़ जाते हैं।

सुबह का भूखा-प्यासा, थका-हारा हीरा जब धर्मशाला पहुँचा तो उसे तीव्र प्यास लग रही थी, उसने चौकीदार से पानी के लिए पूछा तो उसने एक मटके की ओर संकेत कर दिया, प्यास से विह्वल हीरा ने मटके में झाँक कर भी नहीं देखा और लोटे से गट-गट पानी पीने लगा और फिर जाकर एक कमरे में लेट गया, नींद तो उससे कोसों दूर थी फिर भी वह सोने की कोशिश करने लगा।

रात के दो बजे थे, चौकीदार को हीरा के कमरे से दर्द से चीखने की आवाज़ आई। वह तुरन्त दौड़ा, वहाँ जाकर देखता है हीरा दर्द से छटपटा रहा है और उसके मुख से झाग निकल रहा है। चौकीदार के मस्तिष्क में तेजी से कोई बात कौंध गई, उसने तुरन्त मटके में झाँक कर देखा, उसमें एक छिपकली मरी हुई पड़ी थी, वह देखकर काँप उठा। वह उल्टे पैर तुरन्त समीप के वैद्य के पास दौड़ा, वैद्य ने साथ जाने में असमर्थता जतायी और कहा- तुम उसे यहीं ले आओ। चौकीदार दौड़कर पुनः धर्मशाला आता है, वहाँ देखता है हीरा बेहोश पड़ा हुआ है।

उसने रात में ही धर्मशाला में आकर रुके सेठ हरिराम के कमरे के दरवाजे पर दस्तक दी, उसे पूरी बात बताई लेकिन सेठ हरिराम ने सहायता से इन्कार कर दिया, कि मुझे सुबह जल्दी अपने घर पहुँचना है, नहीं तो अनर्थ हो जायेगा।

चौकीदार - सेठ ! मैं तुम्हारे हाथ-पैर जोड़ता हूँ, थोड़ी सहायता कर दो, लम्बा-चौड़ा जवान है, मैं उसे अकेले उठाकर वैद्य के घर नहीं ले जा पाऊँगा, बस तुम वैद्य के दरवाजे तक पहुँचाकर तुरन्त लौट आना, बाकी सब मैं देख लूँगा, सेठ ! चलो, नहीं तो किसी के घर का चिराग बुझ जायेगा, तुम्हारे भी बाल-बच्चे होंगे।

सेठ हरिराम - हाँ-हाँ मेरा भी एक बेटा है, हीरा नाम है उसका।

आज मैं बरसों बाद अपने घर लौट रहा हूँ। मेरा बेटा मेरा रास्ता देख रहा होगा मुझे मत उलझाओ, यदि देर हो गई तो अनर्थ हो जायेगा।

चौकीदार - सेठ ! मान जाओ, नहीं तो बहुत पछताओगे, किसी के दुःख में काम आ जाओ, भगवान करे तुम्हें कभी ऐसे दुःख के दिन नहीं देखने पड़ें।

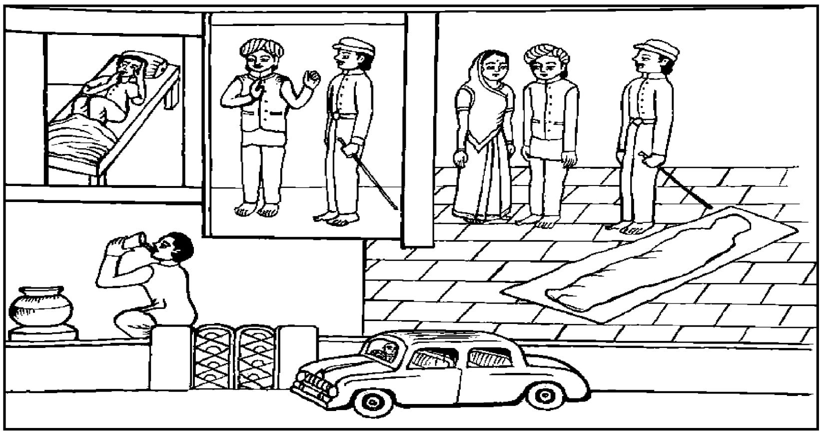

सेठ हरिराम अपने कमरे का दरवाजा लगा लेता है, नींद तो क्या आनी थी, अजीब सी बैचेनी उसे होने लगी, लेकिन सुबह के इन्तजार में बिस्तर पर करवटें बदलने लगा। सुबह के जैसे ही पाँच बजते हैं सेठ हरिराम चौकीदार को आवाज़ लगाते हैं कि धर्मशाला का मुख्य दरवाजा खोल दे - चौकीदार की आँखों में आँसू है, वह रोता-रोता गेट खोल देता है।

सेठ हरिराम - रो क्यों रहे हो ! अच्छा उस लड़के का क्या हुआ ?

चौकीदार - इसलिए तो रो रहा हूँ, बेचारा मर गया।

सेठ हरिराम - ऐं ! मर गया, क्या तुम उसे वैद्य के पास नहीं ले गये थे ?

चौकीदार – ले गया था, एक चादर में बाँध कर घसीट के वैद्य के दरवाजे तक ले गया, लेकिन वहाँ पहुँचते ही उसने दम तोड़ दिया।

सेठ हरिराम – ठीक है, अब मैं यहाँ से जल्दी निकल जाऊँ, और रोते क्यों हो, क्या वह तुम्हारा अपना बेटा था ?

चौकीदार – सेठ ! बहुत पत्थर दिल हो, अपना-पराया क्या होता है, एक जवान बच्चे की मौत हो गई, यदि तुम थोड़ी सहायता कर देते, तो बेचारा बच जाता, इस सुकृत का फल भी मीठा ही आता, अब कम से कम उसके माता-पिता को ढूँढने में मेरी सहायता कर दो।

सेठ हरिराम – मैंने तुमसे कहा न, मेरा बेटा मेरा रास्ता देख रहा होगा, इसलिए अभी तो मुझे क्षमा करो। अच्छा ये रखो 500 रू., यदि उसका कोई नहीं मिला तो अंतिम संस्कार कर देना।

सेठ हरिराम शीघ्रता से गाड़ी चला रहे हैं। अब उनके सब्र का बाँध टूट रहा है। गाड़ी चन्द्रपुर की सीमा में प्रवेश कर जाती है। बहुत दूर से ही उन्हें अपना घर दिखाई दे जाता है। पत्नी कंचन घर के दरवाजे पर ही उदास खड़ी है। घर के सामने ही आकर रुकी गाड़ी को वह उत्सुकतापूर्वक देखने लगती है। जैसे ही सेठ हरिराम गाड़ी से बाहर निकलते हैं उसकी उत्सुकता, प्रसन्नता में बदल जाती है, वह बड़ी प्रीति पूर्वक सेठ हरिराम का स्वागत करती है, लेकिन सेठ हरिराम की आँखें तो किसी और को ही तलाश कर रही है।

सेठ हरिराम – कंचन ! हीरा कहाँ हैं ? क्या अभी तक सो रहा है ? जाओ, उसे जल्दी से जगा दो, उसे देखने को मेरे नयन तरस रहे हैं।

कंचन – उसकी भी तुम्हारे जैसी ही हालत है, आपसे मिलने को वह इतना आतुर था कि अब उससे और इन्तजार नहीं हो सका और वह आपको ढूँढने निकल पड़ा।

सेठ हरिराम – मुझे ढूँढने निकल पड़ा, लेकिन कहाँ ?

कंचन – कह रहा था, पश्चिम दिशा की ओर जाऊँगा और एक-एक गाँव, शहर छानूँगा। वह सबसे पहले सूर्यपुर गया है।

सेठ हरिराम – सूर्यपुर ! क्या कहूँ कंचन, मैं तो कल ही आ जाता, लेकिन सूर्यपुर पहुँचते-पहुँचते ही रात हो गयी और कहीं रास्ते में चोर-डाकू से न लुट जाऊँ, इसलिए सूर्यपुर की धर्मशाला में ही रात में रुक गया था। बहुत मेहनत से धन कमाया, ये सारे उपहार हीरा के लिए तो है, मैंने तो सोचा था, जैसे ही मेरी गाड़ी पहुँचेगी, हीरा बापू-बापू कह कर दौड़ते आयेगा, मेरा प्यारा बेटा, अब तो उसे कलेजे से लगाकर ही ठंडक पहुँचेगी।

कंचन – चलो हीरा के बापू ! अब पहले घर के अंदर चलो, स्नानादि कर लो।

सेठ हरिराम – नहीं, हीरा की माँ ! मैं घर के अन्दर तो हीरा के साथ ही जाऊँगा, ऐसा करता हूँ मैं सूर्यपुर जाकर पहले हीरा को लेकर आता हूँ।

कंचन – लेकिन क्या आप उसे पहचान पाओगे, अब वह दस बरस का बच्चा नहीं रह गया है। तुमसे भी एक हाथ लम्बा हो गया है, देखो ये उसकी फोटो।

सेठ हरिराम कंचन के हाथ से हीरा की फोटो लेकर छाती से लगा लेता है और शीघ्रता से सूर्यपुर की ओर कंचन के साथ निकल पड़ता है। सूर्यपुर पहुँचकर दिनभर हीरा की फोटो दिखा-दिखा कर लोगों से पूछता है, अनेक लोग कहते हैं क्या बात है भैय्या ! कल यही लड़का तुम्हारी फोटो दिखा-दिखा कर तुम्हें खोजता था और आज तुम इसे खोजते हो? लेकिन रात हो जाती है हीरा नहीं मिलता।

सेठ हरिराम यह विचारकर कि कल पुनः हीरा को एक बार सूर्यपुर

में ही खोजूँगा, फिर दूसरे गाँव की ओर जाऊँगा और वे सूर्यपुर की धर्मशाला की ओर चल पड़ता है। चौकीदार उन्हें देख आश्चर्यचकित हो जाता है।

चौकीदार – सेठ ! तुम्हें तो अपने घर जाने की बहुत जल्दी थी, लेकिन फिर से तुम यहाँ ?

सेठ हरिराम – भैय्या ! कुछ मत पूछो, मैं तो अपने घर पहुँच गया था, लेकिन क्या बताऊँ मेरा प्यारा हीरा, मेरा बेटा, मुझे खोजने निकल पड़ा है, कल वह यहीं सूर्यपुर में ही था।

चौकीदार – अच्छा ! कितना बड़ा है तुम्हारा बेटा ?

सेठ हरिराम – मेरा हीरा, अरे बाईस साल का जवान है, मुझसे भी हाथ भर लम्बा है, गोरा-चिट्टा सुंदर है, अरे, हाथ कंगन को आरसी क्या, ये लो देखो उसकी फोटो।

चौकीदार – (जैसे ही फोटो देखता है- हकबकाकर) क्या...? क्या...? ये ..... तुम्हारा पुत्र है, भैय्या अनर्थ हो गया, देखो-देखो मैंने तुमसे कहा था न, ये अपना-पराया क्या होता है, यदि कल रात तुम उसकी सहायता कर देते तो अपना ही तो भला करते।

सेठ हरिराम – (तेज स्वर में) चौकीदार ! चौकीदार आखिर तुम क्या कहना... (हकलाते हुए) तुम क्या, क्या कहना चाहते हो.... बोलो-बोलो....।

चौकीदार – सेठ ! कल रात में जो लड़का मर गया था, वह यही था। (सेठ हरिराम जैसे ही चौकीदार के वचन सुनते हैं गश खाकर गिर पड़ते हैं और उनके भी प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।)

इस कथानक से हमें अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं –

1. **कर भला तो हो भला** – तुम किसी के साथ यदि कोई

भलाई का कार्य करते हो, तो वह दूसरे के भले के लिए नहीं, स्वयं के भले के लिए करते हो। तुम्हारी नेकी का फल तुम्हें भी नेकी के रूप में प्राप्त होगा और वह मीठा ही होगा -ऐसी ही नीति है।

2. **उपलब्ध सामग्री का सदुपयोग करो–** पूर्वपुण्योदय से प्राप्त धनादि को परोपकार में लगाना चाहिए, परोपकार में लगाने से धन घटता नहीं है, बल्कि कृपणता से अर्जित धन भी नष्ट हो जाता है।

3. **कोई भी पर वस्तु अपनी नहीं–** वास्तव में पुण्य-पाप के उदय में प्राप्त कोई भी वस्तु अपनी नहीं है, वह तो मात्र उदयानुसार हमारे संयोग में आई है, हम उसका सदुपयोग करके पुन: पुण्य अर्जित कर सकते हैं और दुरुपयोग करके पाप अर्जित नरकादि गतियों में जाकर अनन्त दुखों को प्राप्त कर सकते हैं। **सोच लें– हमें क्या करना है ?** कभी-कभी अपने-पराये के भ्रम में अपनों का ही वियोग सहना पड़ता है।

4. **खुशी हो या गम–** हमें दुख में तो किसी प्रकार की जिद्द उतावल करना ही नहीं चाहिए, अपना धैर्य नहीं खोकर विह्वल होना ही नहीं चाहिए। पर खुशी में भी यह सब न करते हुए धैर्य एवं विवेक से शांतचित्त से निर्णय करते हुए अपने कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

5. **देखकर ही उपयोग करें–** हमें किसी वस्तु का उपयोग देखकर ही करना चाहिए। जैसे- पानी, दूध, फल, भोजन, कपड़ा, बर्तन आदि कोई भी वस्तु हो।

6. **अपनों को ही सब समर्पण–** तीव्रमोही की दशा होती है कि वह जिसमें अपनापन कर्ता है, उसके लिए तो सब समर्पित करने को सदा तैयार रहता है, पर दूसरे के लिए नहीं। अत: हमें अपने आत्मस्वभाव में ही अपनापन करना चाहिए; क्योंकि परद्रव्य का क्या? जो आज अपना-सा लगता है, कल पराया हो जाता है।। पटाक्षेप।।

9 हृदय परिवर्तन

एक व्यापारी के तीन बेटे थे। वे चतुर भी थे और स्वस्थ भी। व्यापारी बहुत समझदार, सज्जन, दयालु और नेक दिल इंसान था।

एक बार रात का समय था, लगभग बारह बजे थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, अचानक दस-बारह हथियारबंद डाकुओं ने व्यापारी के घर पर हमला कर दिया। डाकू गोलियाँ चलाते हुए दरवाजे को खुलवाने की कोशिश करने लगे। उन्होंने व्यापारी को पुकारकर कहा- दरवाजा खोल दो, नहीं तो तोड़ देंगे।

व्यापारी के लड़कों ने अपनी-अपनी बंदूकें निकाल लीं। वे डाकुओं से मुकाबला करने के लिए तैयार हो गये। व्यापारी ने अपने लड़कों को रोक दिया। उसने कहा - तुम सब एक कमरे में छिप जाओ! पहले मैं अकेला ही डाकुओं से निपटने का प्रयास करता हूँ।

तीनों बेटे और परिवार के दूसरे सभी सदस्य एक कमरे में छिपकर बैठ गये। व्यापारी ने दरवाजा खोल दिया। डाकू जब भीतर घुसने लगे तो व्यापारी ने बहुत कोमल वाणी में निष्कपट भाव से डाकुओं के सरदार से कहा - आओ बेटा ! मेरे घर में आप सबका स्वागत है। अवश्य ही धन की चाह ही तुम सबको यहाँ खींच लाई है। मेरे पास पर्याप्त धन है। आप सब मेरे पुत्रों के समान हैं। मैं शपथ खाकर कहता हूँ न शोर मचाऊँगा और न सहायता के लिए किसी को पुकारूँगा। व्यापारी ने अपनी बात खत्म करते हुए तिजोरी की चाबी डाकुओं के सरदार को दे दी। सरदार ने आश्चर्य भरी दृष्टि से व्यापारी की ओर देखा।

व्यापारी बोल उठा - आओ मेरे साथ ! तिजोरी अन्दर रखी है।

व्यापारी आगे-आगे चलने लगा। उसके पीछे-पीछे डाकू भी चलने लगे। तिजोरी के पास जाकर व्यापारी खड़ा हो गया और सरदार से बोला - ''इसे खोलो ! जो तुम चाहते हो, इसमें वह सब मिलेगा। सरदार ने चाबी लगाकर तिजोरी खोल ली। तिजोरी वास्तव में ही नोट और जेवरों से भरी थी।

डाकुओं का सरदार व्यापारी की ओर देखने लगा। कभी वह धन की ओर देखता था कभी व्यापारी की ओर। व्यापारी ने कहा - मेरे बच्चो ! देर न करो। यदि कोई आ गया तो ठीक नहीं होगा।

सरदार के सभी साथी पैसा बटोरने में लगे थे। उसी समय सरदार

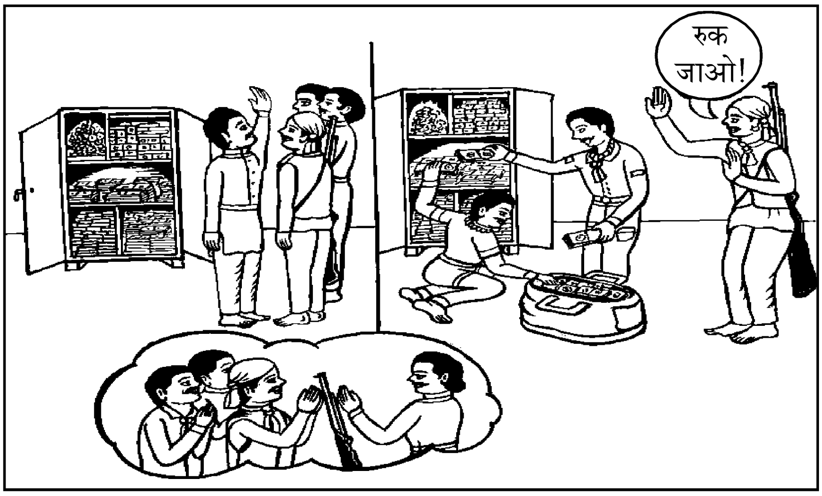

का कड़कड़ाता स्वर सुनाई दिया- रुक जाओ ! सारा धन जैसा का तैसा तिजोरी में रख दो। जिसने हमें बेटा कहा, उसके साथ हम यह काम नहीं कर सकते। इन्होंने हमें अपने पुत्रों के समान माना है तो यह भी हमारे लिए पिता के समान हैं। अब हम इनको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकते, चलो वापस चलें।

यह कहकर डाकुओं का सरदार व्यापारी को प्रणाम करने के लिए

उसके चरणों में झुका, तब व्यापारी ने उसे बीच में ही रोककर गले से लगा लिया और कहा - बेटा ! तुम लोगों की यह धन की समस्या सिर्फ आज की नहीं है, क्यों इसके खातिर किसी का घर उजाड़ते हो, तुम सब जवान हो, हट्टे-कट्टे हो, मेहनत की रोटी खाओ। मेरे पास बहुत जमीन है, जिसे मैं पूरी नहीं जोत पाता, तुम यदि हाँ कहो तो मैं प्रत्येक को चार-चार बीघा जमीन देता हूँ। तुम्हारे पसीने का स्पर्श पा वह जमीन सोना उगलेगी, तुम सबकी जिन्दगी-परिवार खुशहाल हो जायेंगे।

व्यापारी ने जब स्नेह से डाकुओं की तरफ देखा तो सभी की आँखों से आँसू बह रहे थे। डाकुओं ने आजतक गोली का जवाब गोली व गाली से पाया था, लोगों से दुत्कार व नफरत पाई थी; लेकिन आज व्यापारी का स्नेह पा उनका हृदय भीग गया। उन्होंने मन ही मन निर्णय कर लिया कि आज के बाद वे डाके जैसा घृणित कार्य नहीं करेंगे और मेहनत करके कमायेंगे।

सरदार ने कहा - धर्मपिता ! आपका यह आदेश हम सभी को शिरोधार्य है। ऐसा ही होगा, मैं भी......।

व्यापारी ने बीच में ही सरदार को रोकते हुए कहा - नहीं बेटा! तुम्हें यह कार्य नहीं करना है। मैं तुम्हें रक्षा का भार सौंपता हूँ, गाँव में कहीं भी अराजक तत्त्व प्रवेश न कर पायें। माता-बहिनें भी निर्भय हो विचरण कर सकें।

सरदार ने कहा - आप जिस विश्वास के साथ मुझे यह जिम्मेदारी दे रहे हैं, प्राण देकर भी मैं इसकी रक्षा कर सकूँ - यही आशीर्वाद दीजिए। ऐसा कहकर सरदार ने व्यापारी के चरणों की रज को माथे लगा लिया। व्यापारी के सरल निष्कपट हृदय ने आज डाकुओं का हृदय परिवर्तन कर दिया। ●

10 प्रगट हुआ जब अन्तरंग

सेठ श्रीदत्त व सेठानी श्रीदत्ता के चार पुत्र थे; जिनके नाम क्रमशः राम, श्याम, अजय, विजय थे। सेठजी का परिवार एक खुशहाल परिवार था। अचानक वृद्धावस्था में सेठजी को भंयकर बीमारी ने घेर लिया, सेठजी ने अपना अंत समय जान अपनी सम्पत्ति का चारों पुत्रों में बराबर बटवारा कर दिया। सेठजी के पास कुछ बेशकीमती हीरे भी थे, जिसे अपने पलंग के चारों पाये में छुपा कर रखे थे, सेठ श्रीदत्त ने चारों पुत्रों को पास बुलाकर कहा - पुत्रो ! मेरे मरने के पश्चात् तुम चारों एक-एक पाये ले लेना। इसमें कई बेशकीमती हीरे हैं, जिससे तुम्हें कभी दरिद्रता नहीं आयेगी। उसी रात्रि को सेठजी का देहावसान हो गया, चारों पुत्रों ने सलाह करके कहा कि जब तक पिताजी का क्रियाकर्म अंतिम संस्कार की सम्पूर्ण क्रिया न हो जाये, तबतक उनके कमरे को बन्द कर दिया जाये और तेरह दिन पश्चात् ही हम सब अपने-अपने नाम लिखे हुए पाये ले लेंगे।

तेरह दिन पश्चात् जब पिताजी का कमरा खोला और चारों भाई अपने-अपने हिस्से के हीरे लेने पहुँचे तो उसमें से छोटे भाई विजय का पाया गायब था, चारों भाई एक-दूसरे का मुँह देखने लगे- विजय ने कहा ये बात हम चारों भाई के अलावा किसी को नहीं मालूम कि पलंग के पायों में हीरे रखे हैं इसलिए यह तो निश्चित है कि चोरी आप तीनों में से किसी ने ही की है। इतना सुनते ही सभी भाई परस्पर लड़ने लगे और आवाज़ें सुनकर गाँव के सभी लोग इकठ्ठे हो गये, लेकिन कोई भी निर्णय नहीं कर पाया कि चोरी आखिर किसने की। आखिर उन्हें गाँव के वृद्ध पण्डित ने सलाह दी कि यहाँ से 20 कोस

की दूरी पर रत्नपुर नामक गाँव है, जहाँ 40 पंचों की एक पंचायत है जहाँ सदैव न्याय ही होता है तुम उस गाँव में जाओ और अपना निर्णय कराओ।

चारों भाईयों ने रत्नपुर जाने का निर्णय किया। जब वे रत्नपुर पहुँचे और वहाँ की पंचायत में अपनी आप बीती सुनाई। वहाँ पंचायत में उपस्थित 39 पंचों ने न्याय करने का पूर्ण प्रयत्न किया लेकिन वे निर्णय नहीं कर पाये। उनमें से एक पंच वृहस्पति जो पंचायत में अनुपस्थित था वह बहुत वृद्ध था और अपनी इसी अवस्था के कारण पंचायत में उपस्थित नहीं हो सका। जब वृहस्पति को उक्त घटना का समाचार मिला तो, उसने चारों भाईयों को अपने यहाँ खाने पर बुलाया। वृद्ध वृहस्पति के यहाँ उसकी बड़ी ही गुणवान कन्या कमला थी, जो पिता के न्याय करने में उनकी सहायता करती थी, उसने पिता से कहा-

पिताजी इस घटना के न्याय करने का अवसर मुझे प्रदान करें। मुझे आशा है कि मैं अवश्य सफल होऊँगी। पिता का पुत्री पर पूर्ण विश्वास था। इसलिए उन्होंने पुत्री कमला से कहा- ठीक है बेटी इन चारों भाईयों का न्याय तुम्हीं करो, लेकिन याद रखना, मेरे सभी साथी 39 पंच इसमें असफल हो गये हैं। पुत्री कमला ने कहा- आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, मैं अवश्य सफल होऊँगी।

वृहस्पति ने चारों भाईयों से अपनी पुत्री का परिचय कराया कमला ने उनसे कहा- कृपया अभी सभी के खाने के लायक पर्याप्त भोजन नहीं बना है, इसलिए कृपया आप एक-एक भाई भोजन करते जायें, ऐसा कहकर वह प्रथम बड़े भाई राम को भोजन कक्ष में ले गयी।

कमला ने भोजन कक्ष को बहुत सुन्दर ढंग से सजाया था और स्वयं ने भी नवीन वस्त्र और आभूषण धारण किये थे, जिसमें वह अपूर्व सौन्दर्यवती नजर आ रही थी, राम उसे देख बहुत खुश हुआ, कमला

जब स्वयं ही उसे भोजन परोसने बैठ गयी तो, उसने राम के आदर सत्कार में बड़े मीठे शब्द कहे, राम भी उससे बड़ी अच्छी तरह बाते कर रहा था। बातों ही बातों में कमला ने कहा– मैं आपको एक कहानी सुनाना चाहती हूँ, लेकिन उसका अन्त आपको मुझे बताना होगा।

कमला ने कहानी सुनाना आरम्भ की– ''चम्पावती नगरी के राजकुमार और सेनापति के पुत्र में बहुत ही गाढ़ी मित्रता थी, संयोग से दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने साथ ही साथ विद्यालय में विद्याध्ययन भी किया था। जब वे दोनों यौवन की दहलीज पर कदम रखने लगे तो दोनों के विवाह की चर्चा चलने लगी। एक दिन दोनों मित्र उद्यान में टहल रहे थे, तभी राजकुमार ने अपने मित्र से कहा–

मित्र अपने दोनों में से जिसकी भी शादी प्रथम होगी, वह अपनी नववधू को प्रथम रात्रि अपने मित्र के पास पहुँचायेगा, सेनापति के पुत्र ने भी राजकुमार की बात का समर्थन किया।

भाग्य से प्रथम सेनापति के पुत्र का विवाह हुआ, उसकी पत्नी बहुत सुन्दर थी। सेनापति के पुत्र का जब अपनी पत्नी से प्रथम सम्भाषण हुआ, तो उसने अपनी पत्नी को अपने वचन के बारे में बताया और कहा– मैं वचनबद्ध हूँ और तुम्हें मेरे वचन के पालन करने में सहायता करनी होगी। नववधु ने भी अपने पति की आज्ञा को पूर्ण करने का आश्वासन दिया और रात्रि गहन होते ही राजमहल की ओर जाने लगी उसने मन में सोचा कैसी मेरी परीक्षा की घड़ी है, लेकिन मैं अपने शीलधर्म से च्युत नहीं होऊँगी; मैं राजकुमार से अपने शील की रक्षा का अभयदान मागूँगी। जब नववधु राजमहल की ओर जा रही थी तभी मार्ग में चोरों के सरदार ने उसका मार्ग रोक लिया और बोले कौन स्त्री है, जो इस तरह रात्रि में अकेले गमन कर रही है, अपने सभी

आभूषण आदि हमें दे दो नहीं तो तुम्हारा वध कर दिया जायेगा। नववधु ने निर्भीकता से चोरों के सरदार की ओर देखा और कहा-

मैं, यहाँ के सेनापति के पुत्र की नववधु हूँ लेकिन मेरे पति व राजकुमार में शर्त लगी थी कि जिसका विवाह प्रथम होगा, उसकी पत्नी प्रथम रात्रि मित्र के यहाँ रहेगी, सो मैं अपने पति की आज्ञा पूर्ण करने राजमहल जा रही हूँ। तो राजकुमार मुझे भेंट आदि में अवश्य कुछ न कुछ देंगे, इसलिये अभी तुम मेरी यहाँ ही प्रतीक्षा करो, मैं लौटकर अपने सम्पूर्ण आभूषण व भेंट आदि सभी कुछ तुम्हें दे दूँगी। चोरों के सरदार ने भी अपना फायदा जानकर उसे जाने दिया।

जैसे ही वह नववधू राजमहल में राजकुमार के कक्ष में पहुँची, राजकुमार उसे देख आश्चर्यचकित रह गया और राजकुमार ने कहा कि मित्र कहाँ है? और आप अकेली यहाँ कैसे ? तब नववधु ने उसे अपने पति के वचन की याद दिलाई। यह सुनते ही राजकुमार ने कहा- यह तो हमारा नादानी में किया हुआ परिहास था और मित्र इसे सत्य समझ बैठा। आप मेरे लिए माता की तरह पूज्य हैं। इसलिए शीघ्र ही आप मेरे मित्र के पास लौट जायें, नहीं तो यहाँ किसी ने आपको देख लिया तो व्यर्थ ही आपके शील पर सन्देह करेगा। इतना कहकर राजकुमार ने आभूषण आदि नववधु को भेंट में दिये और कहा आप शीघ्र ही मेरे मित्र के पास चली जायें।

इतना सुनकर नववधु पुनः अपने पति के पास लौटी, तभी चोरों के सरदार ने उसका रास्ता रोक लिया और कहा आप तो राजमहल गयी थी और इतनी जल्दी वहाँ से लौट आयी? नववधु ने वहाँ घटित घटना चोरों के सरदार को बतायी। घटना सुनकर चोरों का सरदार नववधु के चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा, अरे, हमारे राज्य का राजकुमार इतना सदाचारी है और मैं उस राज्य में रहते हुए यह नीचकर्म कर रहा

हूँ। धिक्कार है मुझे, इसलिये हे बहिन ! मुझे क्षमा करना और आज से इस नीच चौर्यकर्म को मैं त्याग रहा हूँ, मेरा यह जितना भी धन है इस सबकी स्वामिनी तुम्हीं हो। अब तुम शीघ्र ही अपने पति के पास गमन करो।

इतनी कहानी सुनाकर कमला ने बड़े भाई राम से कहा कि क्या राजकुमार ने व चोर ने नववधु के साथ ठीक किया या उन्हें क्या करना था। राम ने कहा - राजकुमार ने बिल्कुल ठीक किया और चोर ने भी बिल्कुल सही किया।

कमला ने जब इतना सुना तो मन में सोचा राम अपने भाई के हीरों की चोरी नहीं कर सकता; क्योंकि वह एक सदाचारी है। नहीं तो वह सदाचार का समर्थन कैसे करता। वह अपने भाई का धन नहीं चुरा सकता, उसके इस कथन से उसके अन्दर की परिणति का पता चलता है।

कमला ने फिर श्याम को भोजन पर आमंत्रित किया और उसे भी राम की तरह आदर सत्कार के वचन कहे तथा वही कहानी सुनाई और पूछा कि राजकुामर व चोरों ने नववधु के साथ जो किया, उस विषय में आपकी क्या राय है?

श्याम ने कहा- राजकुमार ने तो बिल्कुल ठीक किया, मित्र की पत्नी उसकी भावज थी और माता के तुल्य थी, लेकिन चोर को तो अवश्य उसके सभी आभूषण व भेंट आदि छुड़ा लेना थे; क्योंकि चोरी तो उसका कर्म ही था। कमला ने श्याम का उत्तर सुनकर सोचा- श्याम अपने भाई राम जितना पूर्ण सदाचारी तो नहीं, लेकिन उसमें सदाचार के अंश अवश्य है।

लेकिन उसके चित्त में धन के प्रति आसक्ति तो है, लेकिन इतनी नहीं कि वह अपने भाई का ही धन चोरी कर ले।

इसके पश्चात् कमला ने अजय को खाने के लिए आमंत्रित किया और उसे भी यही कहानी सुनाई और कहा- कृपया, राजकुमार ने व चोर ने क्या नववधु के साथ जो किया वह सही किया या उन्हें क्या करना चाहिये था?

कमला की कहानी सुनकर अजय ने कहा- राजकुमार व चोर दोनों बड़े मूर्ख थे, जो लक्ष्मी उनके घर आयी और दोनों ने उसे दुत्कार दिया। जब दोनों मित्रों ने शर्त लगायी ही थी तो राजकुमार को अवश्य मित्र की पत्नी को प्रथम रात्रि अपने यहाँ ही रखना था और जब चोरों ने प्रथम बार लोभ के वश तो उसे छोड़ दिया, लेकिन जब वह लौटकर भेंट आदि सहित वापिस आई थी तो उसके सभी आभूषण व भेंट आदि छुड़ा लेने थे।

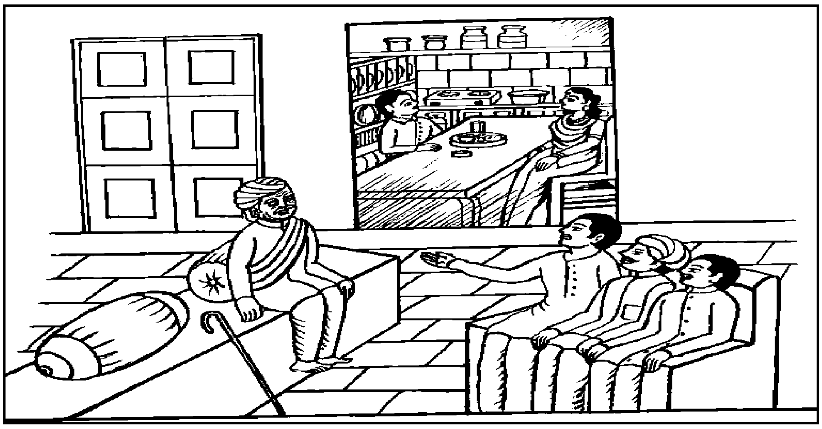

कमला ने जैसे ही अजय का उत्तर सुना वह मन ही मन समझ गयी कि अवश्य अजय ने ही अपने भाई का धन चुराया है; क्योंकि जिसके मन जैसी परिणति होती है वैसी ही प्रगट हो जाती है। अजय के मन में पाप है इसलिए वह अपने अनुसार ही राजकुमार व चोर का निर्णय कर रहा है। यह व्यभिचारी भी है और बेईमान भी, इसलिए अवश्य ही इसी ने अपने भाई का धन चुराया है।

कमला ने उक्त सम्पूर्ण घटना क्रम से अपने पिता को सुनाई और यह भी बताया कि विजय के धन को चुराने वाला अजय ही है। वृहस्पति ने यह सत्य तथ्य पंचायत में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया।

कमला ने भी सभी पंचों के समक्ष कहा कि अजय के विचार गलत थे उसके अन्दर अनेक दोष भरे हुए थे, जिसे चाह कर भी वह छुपा नहीं सका और वे प्रगट हो ही गये।

इसलिए हमें ऊपर से अच्छे नहीं वरन् अंतरंग से अपने दोषों को त्यागना है। तभी हम निर्दोष सिद्ध होंगे।

इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारे अंतरंग में जो भी है, वह बाहर प्रगट न हो -ऐसा नहीं होता। जैसे-

1. यदि हम जैन है तो हमारा बाहरी सदाचार अवश्य ही प्रगट रूप में दिखायी देगा। हम अभक्ष्य भक्षण, रात्रि भोजन, अनछने जल व कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र के त्यागी अवश्य रहेंगे।

2. यदि कोई जीव चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि है तो उसके बाहर में आठ मद, आठ शंकादि दोष, छह अनायतन, तीन मूढ़ता का अवश्य त्याग होगा।

3. कोई जीव पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक है तो उसके बाह्य में ग्यारह प्रतिमा आदि के भाव अवश्य दिखाई देंगे।

4. जो छटवें-सातवें गुणस्थान में झूलते मुनिराज हैं तो उनके बाह्य में 28 मूलगुण अवश्य ही दिखाई देंगे।

इसलिए अंतरंग में हमारी जितनी शुद्धि प्रगट हुई है उसके अनुसार हमारा बाहरी आचरण अवश्य ही दिखायी देता है। हमारे अंतरंग में जैसे भाव हैं वे ही बाह्य में प्रगट रूप में दिखाई देते हैं।

11 सुरत राजा की प्रेरक कथा

सौ इन्द्रों द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवान के चरणों को भक्ति-पूर्वक नमस्कार कर सुरत राजा की कथा लिखी जाती है-

सुरत राजा अयोध्या का राज्य करते थे। उनकी पाँच सौ रानियाँ थीं, उनमें सती नाम की महादेवी को पट्टरानी का पद प्राप्त था। राजा का सती पर तीव्र अनुराग था इसके कारण वे दिन-रात भोगों में ही आसक्त रहते थे, उन्हें राज-काज की कुछ चिन्ता नहीं थी। अन्तःपुर के पहरे पर रहने वाले सिपाही से उन्होंने कह रखा था कि जब कोई खास मेरा ही कार्य हो या कभी कोई साधु-महात्मा यहाँ पधारें तो ही मुझे सूचित किया जाये।

एक दिन पुण्योदय से एक महीने के उपवासोपरान्त दमदत्त व धर्मरुचि नामक मुनिराज आहारचर्या हेतु राजमहल की ओर पधारे। उन्हें देखकर द्वारपाल राजा के पास गया और नमस्कार कर उसने मुनिराजों के पधारने की सूचना दी। राजा उस समय अपनी प्राणप्रिया सती के मुखकमल पर तिलक रचना कर रहे थे। वे रानी से बोले- हे रानी ! जबतक तुम्हारा तिलक सूख भी नहीं पायेगा तबतक मैं शीघ्र ही मुनिराजों को आहार दान देकर आता हूँ। -यह कहकर राजा आहार देने चले गये। उन्होंने मुनिराजों को विधिपूर्वक भक्तिभाव से पवित्र आहार कराया जो कि उत्तम सुखों को देनेवाला है। **सच है दान-पूजा-व्रत, उपवासादि से ही श्रावकों की शोभा है।**

इधर तो राजा ने मुनियों को दान देकर पुण्य का उपार्जन किया और उधर सती रानी अपने विषयसुख में बाधक जानकर मुनियों के प्रति अप्रीति का भाव प्रगट कर बड़ी दुखी हुई। उसने अपने हित-

अहित का विचार किये बिना ही मुनियों की निन्दा करना शुरू कर दिया और बहुत अपशब्द कहे।

सन्तों का यह कहना व्यर्थ नहीं है कि "**इस हाथ दे, उस हाथ ले।**" सती के लिये यह नीति चरितार्थ हुई। अपने द्वारा बाँधे हुए इन तीव्र पापकर्मों का फल उसे उसी समय मिल गया। रानी के कोढ़ निकल आया, सारा शरीर काला पड़ गया, उससे दुर्गन्ध निकलने लगी।

आचार्य कहते हैं - **हलाहल विष खा लेना तो अच्छा है, क्योंकि वह सिर्फ एक जन्म में कष्ट देगा; लेकिन जन्म-जन्म में दुःख देने वाली मुनिनिन्दा करना कभी अच्छा नहीं। ये वीतरागी निर्ग्रन्थ सन्त तो जगतवन्द्य व स्तुति योग्य होते हैं।**

जब राजा मुनिराजों को आहार देकर निवृत हुए, तब शीघ्रता से अपनी प्रिया के पास आ गये। आते ही जैसे ही उन्होंने रानी का काला दुर्गन्धमय और कोढ़युक्त शरीर देखा तो वे बड़े आश्चर्य में पड़ गये। पूछने पर उन्हें उसका कारण मालूम हुआ, सुनकर वे बहुत खिन्न हुए।

उन्हें अब संसार, शरीर, भोग अप्रिय जान पड़ने लगे। उन्हें अपनी रानी का मुनिनिन्दा रूप घृणित कार्य देखकर सच्चा वैराग्य हुआ। उन्होंने उसी समय राजपाट का त्यागकर मुनिदीक्षा ले ली और आत्मकल्याण के कार्य में सावधान हुए।

समय पाकर उस सती नामक रानी की मृत्यु हुई। अपने पाप के फल से वह संसार रूपी वन में घूमने लगी। सो ठीक ही है- अपने किये पुण्य-पाप का फल जीवों को भोगना ही पड़ता है।

इसप्रकार संसार की विचित्र स्थिति जानकर आत्महित के चाहनेवाले सत्पुरुषों को भगवान द्वारा उपदेशित पवित्र जिनधर्म पर सदा विश्वास रखना चाहिए तथा आत्महित में लगना चाहिए, जो कि स्वर्ग और मोक्ष के सुख का प्रधान कारण है। - **आराधना कथाकोष से साभार**

12 करनी का फल
(पाँच पाण्डवों पर आधारित)

राजा धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि कौरव सदा पाण्डवों के अनिष्ट का प्रयत्न करते थे। वे उन्हें लाख के महल में जलाना आदि मरण के अनेक उपाय करते थे, लेकिन पाण्डव सदा अजेयसिद्ध होते थे। अपने सभी उपाय निष्फल होते देख, एक बार खीझ कर दुर्योधन यह घोषणा करता है – ' जो भी इन पाण्डवों को मार कर मेरे कष्ट का निवारण करेगा, उसे मैं अपना आधा राज्य दे दूँगा।'

यह बात सुनकर एक कनकध्वज नामक राजा कहता है –'हे महाराज ! मैं इस कार्य को करने के लिए तैयार हूँ। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आज से सातवें दिन मैं पाण्डवों को काल के गाल में भेज दूँगा और यदि मैं इस कार्य में असफल होता हूँ तो प्रतिज्ञा करता हूँ कि स्वयं अग्नि-कुण्ड में जल कर भस्म हो जाऊँगा।'

ऐसी प्रतिज्ञा कर वह दुष्ट-बुद्धि वहाँ से चल दिया और वन में, जहाँ ऋषियों का एक आश्रम था, वहाँ पहुँचा और होम मन्त्र आदि से कृत्या-विद्या को सिद्ध करने लगा।

इस बात का पता नारदजी को लगता है तो वे वन में उसी समय पाण्डवों के पास आये और उनसे कहते हैं– ' देखो ! तुमको मारने के लिए कनकध्वज राजा कृत्या-विद्या सिद्ध कर रहा है, इसलिए तुम सावधान हो जाओ।'

नारदजी की यह बात सुनकर, पवित्र-बुद्धि धर्मात्मा युधिष्ठर अपनी समस्त इच्छाओं को विषयभोगों से हटाकर, धर्मध्यान में तल्लीन हो जाते हैं। वे मेरुवत् निश्चल खड़े हो नासाग्र-दृष्टि करके आत्मा का ध्यान,

मनन, चिन्तन करने लगते हैं तथा अपने भाइयों को भी कहते हैं – 'तुम सब भी धर्मध्यान में अपना मन लगाओ। यह धर्म, इहलोक और परलोक में जीवों को सुख देने वाला है। इस धर्म-संस्कार के प्रसाद से समस्त अमंगल नष्ट हो जाते हैं और नये मंगल होते रहते हैं। धर्म के प्रभाव से ही दुःख, सुखरूप परिणमित हो जाता है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की प्रखर किरणों के लगने से वृक्ष जल जाता है। अरे ! धर्म धारण से ही इन्द्र का आसन कम्पायमान हो जाता है।'

यह बात युधिष्ठर जब अपने भाइयों से कह रहे थे, उसी समय एक देव का आसन कम्पायमान होता है और वह अवधिज्ञान के बल से यह जान लेता है कि पाण्डवों पर आकस्मिक विपत्ति आने वाली है। यह जानकर वह देव तुरन्त ही वहाँ आता है और संकल्प करता है कि पाण्डवों की, इस आपत्ति के समय अवश्य रक्षा करूँगा।

यद्यपि वह देव यह जानता है कि मैं यदि पाण्डवों से उनकी सहायता करने की बात कहूँगा तो वे उसकी सहायता लेने से इन्कार कर देंगे, अतः वह प्रगट होकर परन्तु युक्ति बनाकर उन्हें कहता है – 'तुम लोग मेरे स्थान पर क्यों ठहरे हो ? क्या तुम मेरा बल नहीं जानते हो? मेरे सामने कोई भी योद्धा एक क्षण भी नहीं ठहर सकता है।'

इसप्रकार कहकर, उस पवित्र आत्मा ने सती द्रोपदी का हरण कर लिया। देव द्वारा द्रोपदी का हरण हुआ देख, पाण्डव उस पर बहुत क्रोधित होते हैं और उसे पकड़ने के लिए नकुल-सहदेव उसके पीछे दौड़ते हैं। दौड़ते-दौड़ते वे दोनों निर्जन वन में पहुँच जाते हैं, वहाँ उनको बहुत तीव्र प्यास लगती है।

अब वे जल की खोज में वन में इधर-उधर घूमने लगते हैं। इतने में ही उन्हें एक सुन्दर तालाब दिखाई देता है, जिसमें अनेक कमल खिले थे, यह तालाब उसी देव ने विक्रिया से बना रखा था। जैसे

ही वे उस तालाब का पानी पीते हैं, वे मूर्च्छित हो जाते हैं। बहुत देर तक जब उन दोनों भाइयों को लौटता हुआ नहीं देखते तो अर्जुन बहुत दुखित होकर बोलते हैं –'हाय ! मेरे दोनों भाई कहाँ गये ? वे अभी तक लौटकर नहीं आये, न जाने क्या बात हो गई? अतः मैं अभी जाकर उनकी खबर लाता हूँ।'

ऐसा कहकर बड़े भाइयों की आज्ञा लेकर, वे द्रोपदी व दोनों भाइयों की खोज में निकल पड़ते हैं और खोजते-खोजते उसी वन में जा पहुँचते हैं और उस तालाब के पास अपने भाइयों को निर्जीव सा पड़ा हुआ देखते हैं। यह देखकर उन्हें बड़ा दुःख होता है, वे उनके वियोग से शोक सागर में डूब जाते हैं और उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है।

जब उनका हृदय जीभर रो लेने से कुछ शान्त होता है तो वे क्रोध में आकर अपने धनुष गाण्डीव को उठाकर गर्जना करते हुए बोलते हैं – 'जिस दुष्ट ने मेरे इन भाइयों को प्राणरहित किया है, वह मेरे सामने आए।'

अर्जुन की यह गर्जना सुनकर धर्मबुद्धि देव कृत्रिमरूप से प्रसन्न होकर बोलता है – 'वीर पार्थ ! तुम्हारे दोनों भ्राता मैंने ही मारे हैं और तुमसे भी कहता हूँ कि यदि तुममें भी ताकत हो तो मेरे कहे अनुसार इस तालाब का पानी पीकर दिखाओ तो ही मैं समझूँगा कि तुम बलवान योद्धा हो।'

देव की यह बात सुनकर अर्जुन क्रोधित होकर उस तालाब का पानी पी लेते हैं और पीते ही उन्हें भी मूर्छा आ जाती है। जिस प्रकार विष भरे जल को पीने से आदमी चक्कर खाकर गिर जाता है, वैसे अर्जुन भी जमीन पर गिर पड़ते हैं।

उधर बहुत समय बीतने पर भी अर्जुन वापस नहीं आते हैं तो क्रमशः भीम व युधिष्ठर भी उन्हें खेजने के लिए वन में जाते हैं। वहाँ

वह देव उन्हें भी युक्ति पूर्वक तालाब का पानी पीने को कहता है और वे भी पानी पीकर मूर्च्छित हो जाते हैं।

इधर कनकध्वज को मन्त्र साधने से सातवें दिन कृत्या-विद्या सिद्ध हो जाती है और प्रगट होकर आज्ञा मांगती है – 'हे स्वामी ! मुझे काम बताओ।' कनकध्वज उससे कहते हैं – 'यदि तुझमें अतुल शक्ति है तो तुम पाँचों पाण्डवों को मार कर मेरी अभिलाषा पूरी करो।'

आदेश को पाकर वह कृत्या क्रोधयुक्त होकर वहाँ झटपट पहुँच जाती है, जहाँ पाँचों पाण्डव पहले से ही मृतवत् पड़े थे। इसी समय वह देव वहाँ भील का रूप बनाकर आता है और पाण्डवों को लौट पलट कर देखने का नाटक करता है, जिससे कृत्या को यह निश्चय हो जाता है कि पाण्डव तो पहले से ही मर गये हैं।

तब उस भील से वह कृत्या कहती है –'मुझे कनकध्वज राजा ने पाण्डवों को मारने भेजा था, परन्तु यह तो पहले से ही यहाँ मरे पड़े हैं, अब तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूँ?'

उत्तरस्वरूप भील कहता है –' वह दुष्ट अत्यन्त नीच है, इसलिए तुम उसी कनकध्वज के पास जाकर उसका काम तमाम कर दो।' भील की यह बात कृत्या को समझ में आ जाती है और वह तत्काल

कनकध्वज को मारने के लिए वापस लौटती है और उसके सिर पर जाकर पड़ती है, जिससे उसका मस्तक फट जाता है। जैसे कठोर वज्र के पड़ने से पहाड़ चकनाचूर हो जाता है, वैसे ही राजा कनकध्वज की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद भील के रूप में वह देव उन पाण्डवों को अमृत नीर से छींटा देकर उनकी मूर्छा दूर करता है।

जब वे पूरे सावधान हो जाते हैं तो देव उन्हें सारा वृतान्त सुनाता है, जिसे सुनकर पाँचों पाण्डव बड़े प्रसन्न होते हैं और युधिष्ठर उसे धन्यवाद देकर, उनका आभार व्यक्त करते हैं।

यह सुनकर भील कहता है –' हे स्वामिन ! मैं सौधर्म इन्द्र का एक प्रीतिपात्र देव हूँ, आपने इससे पूर्व जो दृढ़तापूर्वक धर्म आराधन किया है, उसी संस्कार-प्रभाव से अवधिज्ञान द्वारा आपके ऊपर आने वाली भयानक विपत्ति को जानकर उसे दूर करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। सो ठीक ही है धर्म का फल ही ऐसा है, जो मन-वचन-काय को वश में करके एकाग्र मन से इसका पालन करता है, उसको किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आ सकती।'

पश्चात् वह देव पुनः कहता है –'हे स्वामिन् ! मैंने यहाँ आकर उस दुष्ट कृत्या-विद्या का निवारण किया जो कि आप सभी के प्राण लेने आयी थी। मैंने आप सभी को मूर्च्छित कर दिया, जिससे उसे यह प्रतीत हुआ कि आप तो स्वतः ही मर गये हैं, फिर मैंने उसे यह सलाह दी कि तुम उस दुष्ट, नीच, पापी कनकध्वज को ही नष्ट कर दो। उसने मेरी सलाह मान ली और वापस लौटकर उस पापी का ही काम तमाम कर दिया।'

इसप्रकार सारा समाचार कहकर उस देव ने द्रोपदी को अर्जुन के सुपुर्द कर दिया और उनके चरण कमलों में नमस्कार कर अपने स्थान को चला गया। ●

13 संस्कारों का चमत्कार

राजप्रासाद में आपस में वार्तालाप करते हुए राजा अपनी रानी से बोला-'मदालसे ! अभी भी अपनी गोद सूनी है।' मदालसा विनयावनत हो बोली - 'स्वामिन् ! आप चिन्तित न होइये, आपकी इच्छा शीघ्र ही पूरी होने वाली है। मेरी इच्छा है कि मैं आपके साथ धर्मचर्चा करूँ।

लोक में सबसे बड़ा अन्धकार, सबसे बड़ी आग और सबसे बड़ा विष क्या है ? एक शब्द में उत्तर चाहती हूँ ?'

राजा - शुभे ! सुनो, मिथ्यात्व सबसे बड़ा अन्धकार है जिसको सूर्य का प्रकाश भी नहीं हटा सकता है, यही सबसे बड़ी आग है जिसको मेघ भी नहीं बुझा सकता है तथा यही सबसे बड़ा जहर (विष) है जो जन्म-जन्मान्तर से प्राणियों को विषाक्त कर रहा है।

मदालसा - अहा ! कितना सही उत्तर है। हे आर्य ! 'द' है आदि में जिसके ऐसे पाँच दकार कौन से हैं ? जिनका जीवन में पालन करने से यह आत्मा दुर्गति के दुःखों से बच जाता है तथा सांसारिक सुखों को प्राप्त कर परम्परा से निर्वाण सुख को प्राप्त करता है।

राजा - प्रिये ! दान, दया, दमन, दर्शन तथा देवपूजन ये पाँच दकार जिसके जीवन में होते हैं वह कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है, ऐसा सन्त-महात्मा कहते हैं, क्योंकि -

दान देने वाला कभी अधिक परिग्रह का संचय नहीं करता, जिससे कि वह बहुपरिग्रही बनकर नरकादि दुर्गतियों को प्राप्त हो।

दया परिणाम रखने वाला कभी किसी जीव को सताना, मारना,

पीड़ित करना आदि कार्य नहीं करता है, जिससे उसके अहिंसा धर्म की रक्षा होती है तथा पाप का आस्रव नहीं होता है। अहिंसक मरकर नियम से सद्गति को प्राप्त करता है तथा परम्परा से निर्वाण को भी प्राप्त होता है।

इन्द्रियों का **दमन** करनेवाला और इन्द्रियों को जीतनेवाला इन्द्रियलोलुपी नहीं बनता, अभक्ष्य का भक्षण नहीं करता, सदाचार में तत्पर रहता है। वह अपने इन्द्रिय विषयों की पूर्ति के लिये हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पापों का आश्रय नहीं लेता है; जिससे वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता अर्थात् इन्द्रिय दमन करने वाला नियम से स्वर्गादिक सुगति को प्राप्त कर परम्परा से निर्वाण सुख को प्राप्त होता है।

सम्यक् श्रद्धा **दर्शन** को धारण करनेवाला आत्मा कुछ कम अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल से अधिक संसार में भ्रमण नहीं करता है।

देवपूजन करनेवाला परिणामों की विशुद्धि, प्रभु की भक्ति तथा दया, दानादि श्रेष्ठ गुणों से विभूषित होता है, वह देवपूजन करता हुआ अपने अनन्त भवों के पापों का क्षय कर देता है तथा ऐसे अतिशय पुण्य का आस्रव करता है कि जिसके प्रभाव से वह देवादि श्रेष्ठ गतियों को प्राप्त कर परम्परा से निर्वाण को प्राप्त करता है।

मदालसा – नाथ ! आपके उत्तर से मैं अतिसंतुष्ट हूँ तथा भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि हे भगवान ! मेरी होने वाली सन्तान परम्परा से मोक्ष को देने वाले इन पाँच दकारों को धारण करें। इसी प्रकार धर्मचर्या करते हुए उनके नौ माह सानन्द व्यतीत हुए।

मदालसा हरक्षण सावधान रहती, वह गर्भस्थ शिशु पर सत्-संस्कारों का बीजारोपण करती। नौ माह के बाद शुभ बेला में एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया। रानी ने बालक के जीवन निर्माण का दायित्व धाय के हाथों में न सौंपकर अपने हाथ में लिया। माँ की निर्मल

भावना शिल्पी के हाथवत् बालकरूपी घट को घढ़ने में संकल्पित हुई। वह नवजात शिशु को घुट्टी के साथ धर्मसंस्कार पिलाने लगी।

वह संवेगवती मदालसा बच्चे को दूध पिलाते समय अन्य सभी कार्यों से निवृत हो, भावना करती थी कि हे पुत्र ! तू कभी मेरे दूध को मत लजाना। मेरे दूध की अर्थात् मातृवंश एवं पितृवंश की रक्षा करने के लिये न्यायनीति के कार्यों में सदैव मन-वचन-काय से तत्पर रहना। तू भविष्य में एक आदर्श श्रमण बनकर आदि ब्रह्मा ऋषभदेव भगवान से लेकर भगवान महावीर स्वामी पर्यन्त चली आयी श्रमण परम्परा को चलाने में एक कड़ी बनना।

इसप्रकार वह मदालसा श्रेष्ठ विचारों के साथ दूध पिलाती हुई अपने पुत्र को सुसंस्कारित करती थी। उसे हर समय ऐसा लगता था कि मानों मैं एक भावी श्रमण का पोषण कर रही हूँ। जब वह बच्चे को झूले में झुलाती तो रागात्मक लोरियाँ न सुनाकर उसे वैराग्यप्रद लोरी, आध्यात्मिक भक्तिप्रद भजन सुनाती।

जब बालक को थोड़ी-थोड़ी समझ आने लगी तब वह उसे स्नानादि करवाने के पश्चात् नौ बार णमोकार मंत्र सुनाती तथा कहती- बेटा ! तुझे भी इन पंच परमेष्ठी भगवान के समान ही बनना है। तुम जीवन में हरक्षण इनका स्मरण करना; क्योंकि लोक में ये ही मंगल, उत्तम तथा शरणभूत हैं। जब वह कुछ बड़ा हो गया, बोलने लगा तो सर्वप्रथम उसने बच्चे को पंच परमेष्ठी वाचक 'ॐ' शब्द का उच्चारण सिखाया। उसके बाद 'सिद्ध', 'अरहन्त' आदि मंगलसूचक शब्दों का उच्चारण सिखाया। सायंकाल जब वह सब कार्यों से निवृत्त हो जाती, तब बच्चे को चौबीस तीर्थंकरों के नाम, णमोकार मंत्र तथा छोटी-छोटी स्तुतियाँ सिखाती एवं संक्षेप में महापुरुषों के जीवन की कथाओं को सुनाकर उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करती तथा भगवान भक्त मेंढ़क,

धनंजय कवि आदि की कहानियाँ सुनाकर प्रभु के प्रति भक्ति के संस्कार डालती। जब वह सोने लगता व प्रातः उठता तो उसे नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करवाती व प्रातः उठकर घर के सभी बड़े सदस्यों की विनय करवाती और जब वह बालक उसके चरण छूता तो उसे श्रमण बनने का आशीष देती।

जब वह चलता तब उसे कहती - बेटा ! तुझे श्रमण बनना है न, नीचे देखकर चलो, देखो चींटी आदि कोई छोटे-छोटे जीव मर न जायें। जब वह भोजन करता तो समझाती- ''बेटा ! भोजन करते समय इधर-उधर नहीं देखना चाहिए व वार्तालाप भी नहीं करना चाहिये। जब वह बोलता तब समझाती-''बेटा ! बिना विचारे नहीं बोलना चाहिये। अधिक भी नहीं बोलना चाहिए और सदैव हित-मित-प्रिय वचन बोलने चाहिये।

इसप्रकार वह बालक जिनशासन के पवित्र संस्कारों की छाया में दूज के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगा; लेकिन उसके इसप्रकार अलौकिक चिन्तन व अध्यात्म की चर्चा सुन-देखकर राजा के संदेह की खाई दिन-प्रतिदिन गहरी होने लगी, उसने राग संवर्धक साधनों से बालक को जकड़ने की चेष्टा की, पर उसका प्रयत्न निष्फल रहा।

एक दिन राजा ने सुना कि नौ वर्षीय सुकुमार कल उद्यान में दिगम्बर सन्त का अनुचर (दीक्षित) हो गया। यह सुनकर तो मानों राजा पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। रानी ने राजा को बहुत समझाया और द्वितीय सन्तान की आशा की डोर में बाँध धैर्य दिलाया और आश्वस्त किया। कुछ दिनों पश्चात् रानी के उदर पर गर्भ के चिह्न उभर आये। राजा की खोई खुशियाँ लौट आई। रानी ने द्वितीय पुत्र को जन्म दिया। राजा पहले से अधिक सावधान था, पर विरागी को बाँधने वाला बन्धन क्या आजतक कहीं देखा गया है ?

माँ की सद्भावना एवं सुसंस्कारों से बालक की सुषुप्त चेतना जागृत हुई, वह भी अल्पवय में ही बड़े भाई का अनुचर बन गया। समय का चक्र चलता रहा और एक, दो, तीन, चार, पाँच और छहों राजपुत्र मोक्षमार्ग में बढ़ गये। इन प्रतिकूल घटनाओं से राजा अत्यन्त निराश हुआ। राज्य के उत्तराधिकारी की चिन्ता में दिनों-दिन उदास रहते हुए विचार करने लगा- "क्या राज्य की चिन्ता से मुक्त हुए बिना मैं आत्मकल्याण के मार्ग में बढ़ पाऊँगा ?" इसप्रकार विचार करते-करते राजा के मन में एक युक्ति निकल आई। उसने निश्चय किया कि इस बार होने वाली सन्तान को मैं रानी से अलग रखकर कहीं अन्यत्र पोषण करूँगा, जिससे मेरा मनोरथ निश्चित सफल होगा।

इस विचार से जन्म के प्रथम दिन ही राजा ने नवजात शिशु को माँ (रानी) से विलग कर दिया और उसके पालन-पोषण की व्यवस्था योग्य-धाय को सौंप दी। बालक ने शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त होते हुए यौवन के आँगन में प्रवेश किया। तभी किसी शत्रु राजा के दूत ने राजा को युद्ध की सूचना दी। सूचना सुनते ही राजा को युद्ध में जाने के लिये तत्पर देख राजकुमार बोला- 'पिताजी ! मेरे रहते हुए आप युद्ध में जावें, यह शोभा की बात नहीं है। आप यहीं सुख-शान्ति से रहें, मैं युद्ध में जाऊँगा और शत्रु को परास्त कर लौटूँगा।'

राजा ने राजकुमार को उत्साहित देख युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी एवं शुभ शकुनों के साथ आशीर्वाद देते हुए बोला-'बेटा ! एक बार जाकर अपनी माँ से भी आशीर्वाद ले लो।' पिता की आज्ञा लेकर राजकुमार आशीर्वाद लेने माँ के पास पहुँचा। जन्म के 25 वर्ष पश्चात् प्रथम बार माँ ने पुत्र को व पुत्र ने माँ को देखा। माँ आशीर्वाद देते हुए बोली - बेटा ! युद्ध में तुम्हें विजयश्री प्राप्त हो। इसके साथ मैं तुम्हें एक बात और कहना चाहती हूँ।

राजकुमार बोला-'माँ ! अवश्य कहिये, आपकी हर बात मेरे लिये

शिरोधार्य है।' माँ बोली-'बेटा ! यह एक छोटा-सा पत्र है, इसे अपने गले में बाँध लो। जब कभी तुम्हारे ऊपर आपत्ति आवे तो खोलकर पढ़ लेना, सुख-शान्ति मिलेगी।' राजकुमार ने माँ की आज्ञानुसार पत्र को गले में बाँधकर युद्ध के लिये प्रस्थान किया।

अत्यन्त वीरता से युद्ध में लड़ते हुए भी शत्रुपक्ष का सैन्य बल अधिक होने से राजकुमार की सेना यत्र-तत्र बिखर गई। उसके धैर्य का बाँध टूट गया और वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसी समय उसकी दृष्टि माँ द्वारा प्रदत्त पत्र पर पड़ी। उसने तत्काल उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था- **'जिसके लिये तुम लड़ रहे हो वह राज्यलक्ष्मी बिजली की कौंध एवं जल के बुलबुले के समान चंचल/क्षणिक है।'** पत्र पढ़ते ही बालक के संस्कार (जो माँ ने गर्भावस्था में डाले थे) जागृत हो गये। उसे संसार की वास्तविकता समझ में आ गई। उसने तत्काल निर्ग्रन्थ मुनिराज के चरणों में केशलोंच करके जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली। **- शील मंजूषा से साभार**

जब हाथी भवदु:ख से मुक्त होने का उपाय कर सकता है, तो हम क्यों नहीं?

अरे रे ! पूर्वभव में मैं और भरत साथ में ही थे। मैंने भूल की उससे मैं देव से पशु हुआ। अरे ! इस पशु पर्याय को धिक्कार है !''

भरत को देखते ही हाथी एकदम शांत हो गया। भरत ने प्रेम से उसके माथे पर हाथ रखकर मूक स्वर में कहा – ''**अरे गजराज ! तुम्हें यह क्या हुआ ? तुम्हें यह दुख शोभा नहीं देता, तुम चैतन्य की शांति को देखो।**''

भरत के मधुर वचन सुनते ही हाथी को बहुत शांति मिली, पर्याय से विरक्त हो विचार करने लगा कि –

''अरे, अब पश्चाताप करने से क्या लाभ? अब मेरा आत्म कल्याण हो और मैं इस भवदु:ख से मुक्त होऊँ। ऐसा उपाय करूँगा और अल्प समय में ही उसने देशभूषण-कुलभूषण की दिव्यध्वनि सुनकर सम्यग्दर्शन पूर्वक श्रावक के व्रत अंगीकार कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त किया।''

14 नियम का सुफल

एक नगर में, एक देवदत्त नाम के धर्मात्मा नगर श्रेष्ठी रहते थे। उनका प्रतिदिन एक नियम लेने का नियम था। वे प्रातःकाल उठते ही एक नियम लेते और उसे आठ प्रहर पालन करते थे। एक दिन की बात है वे प्रातःकाल शीघ्र उठकर आत्मा-परमात्मा का चिन्तन कर प्रातःकाल की सैर को निकल पड़े। आज का उनका नियम था कि अपने घर के अन्दर की सामग्री के अलावा अन्य कोई भी सामग्री, बिना किसी के दिए ग्रहण नहीं करेंगे। जंगल में सैर करते हुए उनका पैर किसी कठोर वस्तु से टकरा गया। उन्होंने उस स्थान को पलटकर देखा तो वहाँ मिट्टी पड़ी थी। वे उस स्थान के समीप गये और मिट्टी को हटाकर देखने लगे वहाँ उन्हें एक ढक्कन नजर आया, उन्होंने और मिट्टी हटाई तो वहाँ एक कलश दिखा, उन्होंने जैसे ही कलश का ढक्कन हटाया तो उन्हें उसमें सोने की मोहरें दिखाई दी। वह पूरा कलश सोने की मोहरों से भरा हुआ था।

देवदत्त को तत्काल अपना नियम याद आ गया, उन्होंने कलश का ढक्कन लगाकर उसे वापिस मिट्टी में दबा दिया और सैर से वापिस आकर दैनिक नित्य क्रियाओं से निवृत हो मंदिरजी चले गये। दिन-भर व्यापार की व्यस्तता में उन्हें सुबह की घटना एक बार भी स्मरण में नहीं आई; लेकिन रात्रि में शयन करने के पूर्व उन्हें वह घटना स्मरण में आ गई और वे अपनी पत्नी को उसे सुनाने लगे। पत्नी ने कहा- आपका तो नियम था और फिर 'परधन धूल समान' हमें उससे क्या लेना-देना। पत्नी की ऐसी निर्लोभी प्रवृत्ति देख देवदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई।

जब देवदत्त अपनी पत्नी को यह सब बता रहे थे, उसी समय

उनके घर दो चोर चोरी करने आये थे; लेकिन घर के मालिक-मालकिन को जागृत देख, बाहर ही छुप गये और उन्होंने जंगल में मोहरों से भरे कलश की बात सुन ली। अब वे घर में चोरी का इरादा छोड़ जंगल की ओर भागे। उन्हें वह स्थान भी मिल गया, जहाँ कलश गड़ा हुआ था। कलश देख उनके मुख में पानी आ गया। उन्होंने कलश को मिट्टी से निकाल लिया, लेकिन जैसे ही ढक्कन खोला- उसमें साँप-बिच्छू निकलने लगे, उन्होंने तत्काल ढक्कन वापिस लगा दिया। उन्हें देवदत्त पर बहुत क्रोध आया कि लगता है उसने हम लोगों को छुपे हुए देख लिया था और मोहरों की झूठी बात करके हमें नुकसान पहुँचाने के लिए साँप-बिच्छू रूपी मौत के मुँह में पहुँचा दिया।

चोरों ने देवदत्त को सबक सिखाने की सोची और कलश को एक कपड़े में बाँधकर देवदत्त के घर ले आये और जिस साँप-बिच्छू से देवदत्त हमें कटवाना चाहता था, वही साँप-बिच्छू इसे काट लें –ऐसी बदनीयत से उन्होंने एक खुली हुई खिड़की से कलश को अन्दर फेंक दिया। कलश के गिरते ही खनखनाती हुई सारी मोहरें कमरे में फैल गई। आवाज़ सुनकर देवदत्त व उनकी पत्नी जब उस कमरे में आये तो क्या देखते हैं कि सारा कमरा मोहरों से भरा हुआ है।

देवदत्त व उनकी पत्नी यह दृश्य देख एक-दूसरे को देख हँसने लगे। पत्नी तारा ने कहा- आपका नियम था कि अपने घर के अन्दर की सामग्री के अलावा अन्य कोई भी सामग्री बिना किसी के दिए ग्रहण नहीं करूँगा। इसलिए ये मोहरें स्वयं चलकर यहाँ आ गईं।

देवदत्त विचार करने लगे कि ये मोहरें हमारे घर कैसे आईं, इतने में उन्हें दरवाजा खटखटाने की आवाज़ सुनाई दी। देवदत्त ने जब घर का दरवाजा खोला तो देखा कोतवाल साहब वहाँ दो आदमियों को पकड़े खड़े हैं। – ये दोनों चोर आपके घर में घुसने की फिराक में थे, खिड़की से अन्दर झाँक रहे थे। – कोतवाल ने कहा।

पहले ये बताओ ये कलश यहाँ किसने लाया? - देवदत्त ने पूछा।

चोरों ने कहा- हम ही लाये थे तुमने तो हमें अच्छा फँसवाया, साँप-बिच्छू से भरे घड़े को मोहरों से भरा बता दिया। देवदत्त ने कहा- भाइयो ! मैंने जब देखा इसमें, तब भी मोहरें थी और अभी भी मोहरें ही हैं। देखो (कमरे का दरवाजा खोलकर दिखा देता हूँ फिर कोतवाल साहब व चोरों को सुबह से लेकर रात्रि की पूरी बात बताता है।)

कोतवाल- देवदत्तजी ये सब आपके नियम का ही फल है। फिर आपके भाग्य की मोहरें अन्य को कैसे प्राप्त हो सकती थी?

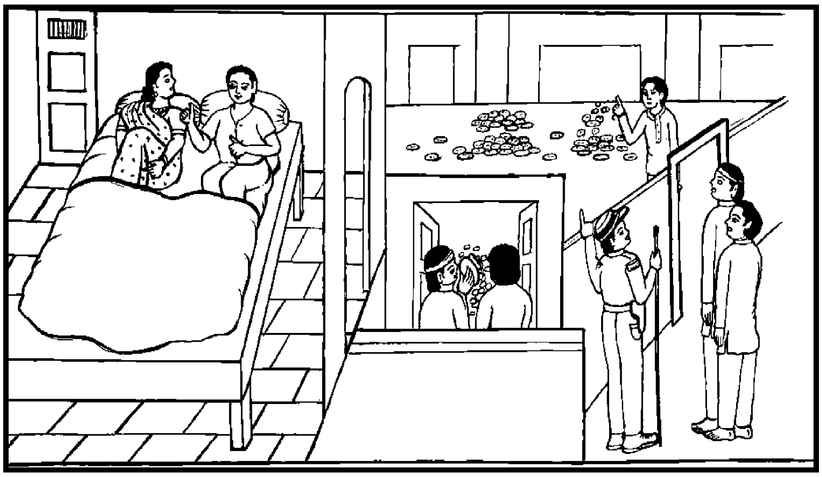

शिक्षा- प्रत्येक श्रावक को अपने जीवन में नियम लेते रहना चाहिये तथा उसका पूर्ण ईमानदारी/श्रद्धा/विश्वास के साथ पालन करते हुए आत्मकल्याण के मार्ग पर लगना चाहिए। यदि हम अपने नियम का दृढ़ता और निस्वार्थभाव से पालन करेंगे तो कभी न कभी उसका लाभ अवश्य होता है। पर ध्यान रहे, **उसमें दृष्टि लाभ पर नहीं होती। बल्कि लाभ हो जाने पर भी खुशी लाभ की न होकर नियम पालन की होती है। जैसे परिणाम होते हैं वैसा फल आये बिना नहीं रहता।**

15 भीष्मपितामह का मृत्यु महोत्सव

कुरुक्षेत्र में भयानक रण छिड़ा हुआ है। आज युद्ध करते हुए जब नौंवा दिन आया, तब शिखण्डी ने लड़ाई के लिये गांगेय (भीष्म पितामह) को ललकारा। दोनों ही योद्धाओं ने एक-दूसरे पर भरपूर प्रहार किया, लेकिन अन्त में शिखण्डी के तीक्ष्ण बाणों के द्वारा गांगेय का कवच छेदा गया। उसने थोड़ी ही देर में उनके सारथी, रथ और रथ की ध्वजा को भी छेद डाला। इतने पर भी पितामह बिना रथ के हाथ में तलवार लेकर शिखण्डी को नष्ट करने के लिए उसकी तरफ दौड़े। शिखण्डी ने भी अपने प्रखर बाणों के द्वारा उनकी तलवार को भी विफल बना दिया और खुद उनके हृदय को अपने बाणों द्वारा छेदन कर दिया।

बाण लगते ही वे वीरभूमि पर गिर पड़े और अपनी आयु पूर्ण होती देखकर उन्होंने संन्यास धारण कर लिया और धर्मध्यान में मन लगाया। उन्होंने उस समय बारह भावनाओं का चिंतवन किया, पंच परमेष्ठी का आराधन किया एवं शरीर और भोजन से ममता छोड़ दी।

पितामह की यह अवस्था देखकर सब राजा लोग युद्ध छोड़-छोड़कर उनके पास दौड़े आये। पाण्डवों को उनकी इस दशा पर बड़ा भारी दुःख हुआ। वे उनके चरणों में मस्तक रखकर रुदन करने लगे, अश्रुओं की धारा बहाने लगे। वे बोले- हे गुणी ! आपने आजन्म ब्रह्मचर्य धारण किया, जो कि सब व्रतों में उत्तम व्रत है। अहो पूज्य पितामह ! तुम सब गुणों की खानि थे। दुःख से जर्जरित हुये युधिष्ठिर बोले- हे श्रेष्ठ व्रत पालक वीर ! यह मृत्यु हमें क्यों न आई ? हम आपके इस वियोगजन्य दुःख को सहन नहीं कर सकते हैं।

उस समय उनके रुदन को सुनकर बाणों से जर्जरित पितामह ने

कौरव और पाण्डवों से कहा कि हे बुद्धिमान वीरो ! अन्त में मेरा तुम लोगों से यही कहना है कि तुम पारस्परिक शत्रुता को छोड़कर सब जीवों को अभयदान दो, आपस में मैत्री भाव रखो। मुझे इस बात का दुःख है कि मेरे नौ दिन व्यर्थ में चले गये और किसी को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। हाँ, इतना जरूर हुआ कि युद्ध में जो लोग मारे गये वे नीचगति के पात्र हुए होंगे। खैर, **अब तो क्षमा धर्म को स्वीकार करो, जो कि आत्मा का स्वरूप है।**

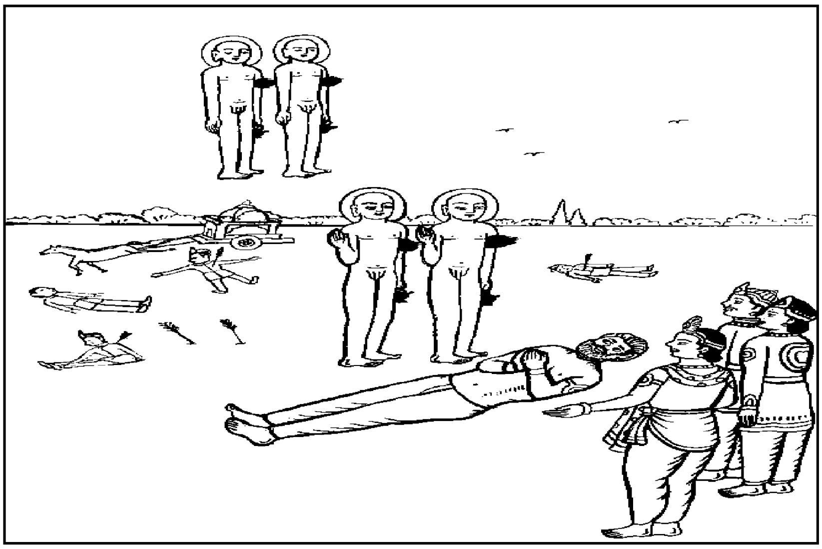

इसी समय शुभकर्म के संयोग से दो चारण ऋद्धिधारी मुनीश्वर हंस व परमहंस नामक आकाश मार्ग से विहार करते वहाँ पधारे। वे मुनिराज परमदयालु, शुद्धहृदयी, उत्तम तपों को तपने वाले, गुणों के भण्डार थे। वे बड़भागी पितामह के पास जाकर उनसे बोले कि-

हे महापुरुष ! तुम वीर योद्धा हो, तुम्हारे बराबर संसार में कोई दूसरा वीर नहीं है। अब शीघ्र कर्म शत्रुओं का विनाश करो। मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर गांगेय उन दोनों मुनियों के चरणों में नमस्कार कर बोले कि- हे दयालु प्रभो ! इस संसार रूप महावन में भटकते हुये मैंने

आज तक भी धर्म को नहीं पाया। अब आप कृपाकर बतलाइये कि स्वामी इस समय मैं क्या करूँ? नाथ मैं इस समय आपकी शरण में हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।

पितामह की यह बात सुनकर मुनिराज ने कहा– कि हे भव्य! तुम सिद्धों का स्मरण कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् तप रूपी चार आराधनाओं को आराधो।

तत्त्वार्थ के श्रद्धान को, वस्तु के स्वभाव सहित पदार्थों के श्रद्धान करने को **दर्शन आराधना** कहते हैं –इसमें सम्यक्त्व की आराधना की जाती है। नय-प्रमाण के द्वारा पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होना, सो **ज्ञान आराधना** है। इसमें जिनकथित वस्तु स्वरूप के द्वारा सम्यग्ज्ञान की आराधना होती है। चैतन्यरूप आत्मा में ही रमण करना सो **चारित्र आराधना** है। इस आराधना में कर्मों की निवृत्ति और आत्मा में सम्यक्प्रवृत्ति होती है। जहाँ अन्तरंग-बहिरंग के भेद से दो प्रकार का तप तपा जाता है, उसको **तप आराधना** कहते हैं।

इसप्रकार आराधनाओं को आराधने की विधि बतलाकर वे निस्पृही, ममत्व त्यागी मुनिराज तो वहाँ से गमन कर गये और इधर पितामह ने उन आराधनाओं की आराधना प्रारम्भ कर दी।

इसके पश्चात् उन धीर-वीर पितामह ने चार प्रकार के आहार खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय को तथा शरीर से ममत्व को छोड़कर, रत्नत्रय में लीन हो काय व कषाय सल्लेखना ग्रहण की; पश्चात् सब जीवों से क्षमा माँग व सब जीवों को क्षमा प्रदान की और पंचपरमेष्ठी के ध्यान में चित्त को लगाते हुए शान्त परिणामों से इस नश्वर शरीर को त्याग दिया। वे यहाँ से मरण कर ब्रह्म नामक पाँचवें स्वर्ग में देव हुए। सो ठीक ही है, इस जीव को संसार में एक धर्म ही सुख देने वाला है।

– श्री पांडवपुराणजी से साभार

16 सेठानी दानशीला

सेठानी ! आज तो चने खाने का मन है। सेठ इन्द्रदत्त के ये वचन सुन सेठानी इन्द्राणी चौंक उठी। क्या छप्पन करोड़ दीनार के अधिपति नगर श्रेष्ठी को चने खाने का भाव ? "**कहीं चने फाँकने के दिन तो नहीं आने वाले हैं ?**" लगता है - लक्ष्मी जाने वाली है, फिर इस चंचला का क्या विश्वास, यह तो ऐसी है जैसे 'पानी बीच पताशा' क्षणभंगुर है, विनाशीक है, पुण्य की चेरी है। ऐसा कहते हुए सेठानी ने विचार किया कि **'यदि पाप का उदय भी आने वाला है तो भी 'मैं पाप परिणाम क्यों करूँ?'** जब लक्ष्मी जाने ही वाली है तो क्यों नहीं, इसे दान-पुण्य के कार्यों में खर्च करूँ। उन्होंने सेठ इन्द्रदत्त से पूछा- स्वामी ! आज मुझे प्रतिदिन की अपेक्षा दान में कुछ ज्यादा राशि देने का भाव है।

सेठ इन्द्रदत्त ने कहा- सेठानी ! इसमें पूछने की क्या बात है आप इस प्रचुर धन की स्वामिनी हो, चाहे जितना धन दान में दे सकती हो। दान से ही तो हमारे गृह की शोभा है अन्यथा दान बिना गृह श्मशान के समान है - इतना कहकर सेठ इन्द्रदत्त व्यवसाय हेतु अपनी रत्नों की पेडी (दुकान) पर चले गये।

सेठ इन्द्रदत्त के प्रासाद पर छप्पन करोड़ दीनार की प्रतीक स्वरूप छप्पन ध्वजायें लगी हुई थी, लेकिन उसमें से आज मात्र ब्यालीस ध्वजा ही रह गई; क्योंकि सेठानी इन्द्राणी ने चौदह करोड़ दीनार आहार, औषध, ज्ञान और अभयदान चारों प्रकार के दान में स्व-पर के अनुग्रह हेतु दे दी थी। ऐसे सत्कार्य करने पर उनका चित्त भी बहुत हर्षित था।

जिस समय सेठ इन्द्रदत्त व सेठानी इन्द्राणी के प्रासाद पर उक्त

घटना हो रही थी, उसी समय इसी उज्जयिनी नगरी के राजा महीदत्त के राजदरबार में गहन मंत्रणा चल रही थी। विषय था– राजकोष में धन की कमी हो जाना और विपत्ति आने के पूर्व ही शीघ्रता से उसकी पूर्ति कैसे हो ?

हल निकाला गया – 'राज्य में जो करोड़ों दीनार के अधिपति श्रेष्ठीगण हैं वे स्वेच्छा से एक विशाल राशि राजकोष में जमा करायें।'

राजाज्ञा पाकर इस कार्य को गुप्त रीति से संपन्न करने हेतु नियुक्त व्यक्ति धन एकत्रित करने निकल पड़े। जब वे श्रेष्ठी इन्द्रदत्त के प्रासाद के समीप पहुँचे तो दूर से लहराती गगन चुम्बी छप्पन ध्वाजाओं के स्थान पर उन्हें आज सिर्फ ब्यालीस ध्वाजायें ही दिखाई दीं। उन्हें लगा अवश्य श्रेष्ठी इन्द्रदत्त को राजकोष में धन जमा करने की बात पता लग गई, इसलिए उन्होंने धन बचाने के लिए धन कहीं छुपा दिया है। यद्यपि श्रेष्ठी इन्द्रदत्त के प्रति उन्हें ऐसा सोचना गलत लगा, क्योंकि वे उदारमना परोपकारी सज्जन व्यक्ति थे। लेकिन प्रत्यक्ष को कैसे झुठलाया जा सकता था। अत: उन्होंने राजा को खबर करना उचित समझा।

राजा महीदत्त को जब ये बात ज्ञात हुई तो उन्होंने सेठ इन्द्रदत्त को तुरन्त राजदरबार में हाजिर होने का फरमान निकाला। सेठ इन्द्रदत्त भी राजाज्ञा पाकर पेडी ऐसे ही खुली छोड़ तत्काल राजदरबार में पहुँचे।

श्रेष्ठी इन्द्रदत्त ! आप नगरश्रेष्ठी के सम्मानीय पद पर आसीन हैं, हमें आपसे ऐसी आशा नहीं थी।

महाराज ! मैं आपके कथन का अभिप्राय नहीं समझ सका ?

श्रेष्ठी ! आपके प्रासाद पर कितनी ध्वजाएँ लगी हुई हैं ?

महाराज ! राज्य नियम के अनुसार 1 करोड़ दीनार की एक ध्वजा के हिसाब से आज प्रातःकाल तक तो मेरे गृह पर छप्पन ध्वजायें लगी हुई थी, लेकिन अभी कितनी लगी है – यह मुझे ज्ञात नहीं।

श्रेष्ठी ! प्रासाद आपका, धन आपका और आपको ही ज्ञात नहीं?

महाराज ! बात कुछ ऐसी है आज सेठानी को कुछ विशेष राशि दान में देने का भाव था, उन्होंने कितनी राशि दी, यह तो मुझे घर जाकर ही ज्ञात होगा।

श्रेष्ठी ! तो क्या सेठानी ने चौदह करोड़ धन दान में दे दिया? क्योंकि अभी आपके प्रासाद पर मात्र ब्यालीस ध्वजायें लगी हैं।

महाराज ! यह असंभव भी नहीं।

श्रेष्ठी ! आपकी बात पर सहसा विश्वास नहीं होता, क्यों न सेठानी इन्द्राणी को ही यहाँ बुलवाकर सच बात पूछी जावे।

महाराज ! अवश्य बुलवाइये, साँच को आँच नहीं 'आप कहें तो मैं स्वयं जाकर सेठानी को लेकर आता हूँ।

नहीं श्रेष्ठी ! आप यहीं रहें, हम अभी रथ भिजवाते हैं, महारानी की विश्वस्त दासियाँ स्वयं सेठानी को लेने जायेंगी।

सेठानी इन्द्राणी राजदरबार में पधारती हैं। महारानी स्वयं अपने निकट बैठने को आसन देती हैं। राजा महीदत्त जब सेठानी को सत्य कहने को कहते हैं तो सेठानी सुनकर मुस्कुरा देती हैं और कहती हैं- हे राजन् ! इसमें आश्चर्य की क्या बात; लक्ष्मी के तीन गुण- खा लें, खर्च लें या दान में दे दें; फिर वे राजा को पूरी बात बताती हैं कि कैसे सेठजी को आज चने खाने का भाव हुआ और मुझे लगा कि सम्पत्ति तो जानी है तो क्यों नहीं इसे दान में ही दे दूँ, इसलिए आज मैंने चौदह करोड़ दीनार को चारों प्रकार के दान में वितरित किया। महाराज ! इसमें पाँच करोड़ दीनार की राशि राज्य में सुभिक्ष हेतु अभयदान स्वरूप है, मेरे सेवक यह राशि लेकर आते ही होंगे।

सेठानी इन्द्राणी की बात सुन महाराज महीदत्त हर्ष विभोर हो अपने

स्थान पर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं- सेठानी इन्द्राणी ! **'हमारी नगरी धन्य है, जहाँ आप जैसे धर्मात्मा श्रावक-श्राविका रहते हैं, जो राष्ट्रहित के लिए इतने उत्तम विचार रखते हैं। आप जैसी दानशीला के विद्यमान रहते हुए तो राजकोष सदैव भरा हुआ ही समझो।'**

महाराज महीदत्त भण्डारी को आदेश देते हैं कि सेठ इन्द्रदत्त को चौदह करोड़ दीनार धनराशि राजकोष से प्रदान की जावे, ताकि उनके प्रासाद पर छप्पन ध्वजायें पुनः लहराने लगें और वे स्वयं सेठानी इन्द्राणी को धर्मबहन बना रत्नमयी आभूषण व अनेक उपहारों सहित आदर-सम्मान से विदा करते हैं।

अहा ! धन्य है उन मुनिराजों को, उनके जीवन को !

सुकौशल मुनि के शरीर को खाते-खाते वाघिन की नजर उनके हाथ के ऊपर पड़ी... हाथ में एक चिन्ह देखते ही वह आश्चर्यचकित रह गयी। विचार आया कि यह हाथ मैंने कहीं देखा है...उसे पूर्वभव का स्मरण हुआ। **''अरे, यह तो मेरा पुत्र ! मैं इसकी माता। अरे रे, मैंने अपने पुत्र को ही खा लिया।''** अब तो उसकी आँखों में से आँसुओं की धारा बहने लगी।

उसी समय कीर्तिधर मुनिराज का ध्यान टूटा और उन्होंने वाघिन को सम्बोधित दिया – ''अरे वाघिन ! (सहदेवी) पुत्र के प्रति विशेष प्रेम के कारण ही तेरी मृत्यु हुई, उस ही पुत्र के शरीर का तूने भक्षण किया ? **अरे रे, इस मोह को धिक्कार है। अब तुम इस अज्ञान को छोड़ और क्रूरभावों को त्यागकर आत्मा को समझकर अपना कल्याण करो !''**

मुनिराज के उपदेश को सुनकर तुरन्त ही उस वाघिन ने धर्म प्राप्त किया, आत्मा को समझकर उसने माँस-भक्षण छोड़ दिया, फिर विरक्त हो संन्यास धारण कर देवलोक को प्राप्त गई।

श्री कीर्तिधर मुनि भी केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गये।

(राजा रघु और राम आदि महापुरुष भी कीर्तिधर राजा के वंश में ही हुए हैं।)

17 सती मैनासुन्दरी

जब राजा पहुपाल की बड़ी बेटी सुरसुन्दरी अपना वर स्वयं पसंद कर पिता को बता देती है, तब राजा अपनी छोटी कन्या मैनासुन्दरी से भी कहते हैं- बेटी ! तुम्हें अपनी इच्छानुसार जो कोई भी वर अभीष्ट हो सो हमसे कहो, तुम्हारी ज्येष्ठ बहन सुरसुन्दरी के समान तुम्हारा विवाह भी तुम्हारी इच्छानुसार वर से होगा।

पिता की इस बात को सुन मैनासुन्दरी स्तब्ध रह गयी एवं उसके हृदय में कठोर आघात-सा हुआ, वह एकदम चुप रही, उसके मुख से कोई भी बात नहीं निकल पायी। वह मन में विचारती रही कि पिताजी ने ऐसी बात क्यों कही? क्या कुलीन कन्याएँ स्वेच्छापूर्वक वर को पसन्द करती फिरती हैं? सुशील कन्याओं के लिये ऐसा करना या इस संबंध में अपने अभिभावकों से कुछ कहना लज्जाजनक बात है। जिसने श्री जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रन्थ गुरु एवं दयामय धर्म को नहीं जाना है, उनकी ही अवस्था ऐसी होती है। दशलक्षण एवं रत्नत्रय धर्म को अच्छी तरह जाने बिना उचित-अनुचित की विवेचना नहीं हो पाती। इसप्रकार वह अपने मन में विचारती हुई निर्निमेष नेत्रों से पृथ्वी की ओर देखती रही। फिर भी राजा उसके आंतरिक भाव को नहीं समझ सका तथा पुनः बोला- 'तुम्हें जो वर पसन्द हो निःसंकोच कहो। जब मैनासुंदरी ने देखा कि उत्तर दिये बिना काम नहीं चलेगा, तो विवश होकर उसने कहना प्रारम्भ किया।

पिताजी ! आपको क्या सचमुच मालूम नहीं कि कुलीन एवं शीलवती कन्याएँ अपने मुख से किसी अभीष्ट वर की याचना कदापि नहीं करती ? उनके अभिभावक माता-पिता, बन्धु-बान्धव, स्वजन,

गुरुजन जिस वर को योग्य जानकर उसके साथ विवाह कर दें, वही उसके लिये सर्वश्रेष्ठ होता है। माता-पिता से बढ़कर भलाई-बुराई का ध्यान और किसको हो सकता है ? ज्येष्ठ भगिनी सुरसुन्दरी ने जो इच्छित वर की याचना की वह कुगुरु व कुशिक्षा के अनर्थकारी दोष का प्रभाव है, संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। मैं इस विषय में आपसे कुछ नहीं कहना चाहती, आपको पूर्ण अधिकार है कि चाहे जिसके साथ मेरा विवाह कर दें, इस संसार में इष्ट-अनिष्ट वस्तुओं का संयोग-वियोग पूर्व कर्मानुसार स्वयमेव समयानुसार संघटित या विघटित अवश्य ही होता रहता है "**मेरे भाग्य में जो होगा वही होगा।**"[1] (मैनासुंदरी की शिक्षा जैन आर्यिकाओं के सानिध्य में हुई थी।)

सती मैनासुन्दरी के चरित्र पर शंका-

जब कोटीभट श्रीपाल का कुष्ठ रोग ठीक हो जाता है, तब एक दिन राजा श्रीपाल व महासती मैनासुन्दरी जिनदर्शन हेतु चैत्यालय जाते हैं और दर्शन-पूजन करके वहाँ एक महामुनिराज को विराजमान देख हर्षित हो उनकी स्तुति करते हैं और धर्मोपदेश के याचक हो वहाँ बैठ जाते हैं। उसी समय मैनासुन्दरी की माता रानी निपुणसुन्दरी भी दर्शन करने जिनालय आती है और वहाँ मैनासुन्दरी को एक सर्वांग सुन्दर कामदेव समान पुरुष के साथ बैठे देख शंकित चित्त होती है।

वह मन ही मन विचारने लगती है- हाय ! आज मैं यह क्या देख रही हूँ ? मेरी कन्या होकर भी मैनासुन्दरी ने यह कैसा अनर्थ कर डाला ? पर-पुरुष का संसर्ग इसे कैसे उचित लगा ? यह उत्पन्न होते ही क्यों न मर गयी। यदि गर्भपात हो जाता, तो हमें इतना दुःख एवं सन्ताप न होता, जितना कि इस समय अपने निर्मल कुल में कलंक कालिमा लगते हुए देखकर हो रहा है।

---

1. श्री कोटिभट श्रीपाल चरित्र पृष्ठ 15 से 18

अरेरे इसने यह क्या किया? इसने क्या अपने कोढ़ी पति श्रीपाल को छोड़ दिया है, जो अब इस सुन्दर पुरुष के संग में बैठी हुई है। इसे क्या तनिक भी लज्जा नहीं आती? हमें क्या मालूम था कि इसकी सारी बुद्धिमत्ता थोथी थी। इसने विवाह के समय तो पतिव्रत्य का सच्चा स्वरूप सबको बतलाया था तथा अपनी ज्ञान गरिमा से समाज को चकित कर दिया था, वह सब धोखा था या यह धोखा है ? यदि इसे अन्त में ऐसा ही करना था तो पिता के कहने पर अभिलषित सुन्दर पति के लिये स्पष्ट शब्दों में याचना कर लेनी चाहिये थी, जैसी कि इसकी ज्येष्ठ भगिनी सुरसुन्दरी ने की थी, उस समय तो इसने उच्च आदर्श दिखलाया और आज यह पतित अवस्था ? हाय ! इसने अपने मातृकुल एवं पतिकुल का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा, इसकी धर्मप्रियता आज कहाँ गई ? इसके ज्ञान-बुद्धि-गुण एवं चातुर्य सब कृत्रिम ही थे। हाय ! जिस अधःपतन की कल्पना मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकती थी वही आज अपने नेत्रों से स्पष्ट देख रही हूँ।

घृणा और दुःख से रानी के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली, फिर भी वह मौन थी। इस संसार में भला ऐसे भी कोई माता-पिता होंगे जो अपनी सन्तान को व्यभिचार के गहरे गर्त्त में गिरता देखकर भी दुःखित एवं अनुतप्त न हो? ऐसी स्थिति में सभी को ग्लानि एवं क्षोभ होना स्वाभाविक ही है।

मैनासुन्दरी अपनी माता के मुख-मण्डल पर भाव-विकार की रेखाओं को अत्यन्त स्पष्ट देखकर समझ गयी कि बात क्या है ? वह निश्छल भाव से अपने पति के साथ माता के पास जाती है, लेकिन उसकी माता उसकी ओर नहीं देखती, तब उसे निश्चय हो जाता है कि उसकी आदरणीया माता को उसके विषय में अनुचित सन्देह उत्पन्न हो गया है। वह लज्जा से मस्तक को नत किये हुए कहने लगी-

हे माता ! आपका सन्देह करना उचित नहीं, इसे दूर कर दीजिये यह मेरे साथ जो पुरुष है वही आपके जमाता राजा श्रीपाल हैं, जो विवाह के समय कोढ़ी थे एवं जिनसे आप लोगों ने विधिपूर्वक मेरा पाणिग्रहण कराया था। धर्म के प्रभाव से अशुभ कर्मों का नाश हो जाने पर इनका शरीर एकदम निरोग होकर कामदेव के समान सुन्दर हो गया।

परन्तु इस असंभव घटना को देखकर रानी को सहज ही विश्वास कैसे हो सकता था ? कन्या की बातों को सुनकर रानी ने तिरस्कार पूर्वक कहा- बेटी ! तू हमीं को ठगने चली है ? तुममें इतनी निर्लज्जता कैसे आ गयी ? मैं तुम्हारी बातों को कदापि सत्य नहीं मान सकती हूँ। अग्नि में कदाचित् शीतलता आ सकती है, सूर्य भी कदाचित् पश्चिम में उदित हो सकता है, परन्तु तुम्हारी बातों की सत्यता को स्वीकार कर लेना एकदम असम्भव है।

अब अपनी सासु माँ की उक्ति का प्रतिवाद करना श्रीपाल के लिये आवश्यक हो गया, इसलिये उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा- हे माताजी! आप भ्रम में हैं। अपनी सती कन्या की बातों पर अविश्वास न कीजिये, मैनासुन्दरी जैसी कन्या को उत्पन्न करके आपका वंश धन्य हो गया है। यह साधारण स्त्री नहीं है, इसे आप सती स्त्रियों की मुकुटमणि कह सकती हैं। इसके अखण्ड शील एवं व्रत की चाहे जितनी भी प्रशंसा की जाये थोड़ी है, इसके ही पुण्य प्रभाव से सात सौ अन्यान्य मित्रों के साथ मेरा गलित कुष्ठ एकदम दूर हो गया है एवं ऐसा दिव्य सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ है, आप विश्वाश कीजिये, मैं वही कोढ़ी श्रीपाल हूँ। देखिये, अभी भी मेरे अंगुष्ठ में किंचित् कुष्ठ शेष है। अपने जमाता के मुख से इन वचनों को सुनकर माता को पूर्ण विश्वास हो गया एवं वे सन्तुष्ट हो गयी।

प्रसन्नता के कारण उनका शरीर पुलकित हो उठा तथा कन्या

एवं जामाता को देख-देखकर भी उनकी आँखें तृप्त न हुई। निर्निमेष नेत्रों से वे उनको देखने लगी, उनकी आनन्द विह्वलता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। किन्तु इस अतुलनीय आनंद का एकाकी उपभोग करना उन्होंने उचित नहीं समझा एवं इस शुभ समाचार को सुनाने के लिये पति के पास जाने का निश्चय किया। गुरु के चरण कमलों में नमस्कार कर उन्होंने राजप्रासाद की ओर प्रस्थान किया।[1]

अपार समुद्र में तैरते श्रीपाल-

एक साधारण-सा पत्थर का टुकड़ा पानी के ऊपर नहीं तैर सकता, वह डूब जायेगा, किन्तु सैकड़ों मन का पत्थर यदि नाव में भर दिया जाये, तो एक भी पत्थर नहीं डूब सकता। श्रीपाल को भी तो बिना नाव का नहीं कहा जा सकता ? उसके पास भी धर्मरूपी ऐसी नाव थी, जो एक समुद्र से तो क्या सम्पूर्ण संसार रूपी सागर से भी पार उतार सकती थी। जो विशाल एवं अनंत विश्व से क्षण भर में ही पार करा सकती हो, ऐसी जिनधर्म रूपी नौका के लिये समुद्र क्या है ? मनुष्य यदि पुण्यकार्य करने के लिये तत्पर रहता है, तो पुण्य भी सर्वत्र उसकी रक्षा करने के लिये सन्नद्ध रहता है। निरन्तर श्री जिनेन्द्र प्रभु के नाम रूपी महामन्त्र को जपते हुए श्रीपाल उस पटरी के सहारे तैरते हुए कुँकम द्वीप के तट पर जा लगे।[2]

कोई सहारा है नहीं, यों सोच मत लाना।
चत्तारि शरणं पाठ पढ़, निज की शरण आना।।
निज भावना भाते हुए, वैराग्य बढ़ाओ।
सर्वत्र सुन्दर एक की ही, भावना भाओ।।

सच्ची शांति पुण्योदय से नहीं, बल्कि स्व-स्वरूप की सच्ची समझ से होती है।

1. श्री कोटिभट श्रीपाल चरित्र पृष्ठ 47 से 48, 2. वही पृष्ठ 99

17 परमात्मा के दो प्रकार

''एक रिक्शा चलाने वाला भी करोड़पति हो सकता है'' इस उदाहरण से प्रत्येक जीव स्वभाव से परमात्मा है और स्वभाव का आश्रय ले तो पर्याय में भी परमात्मा बन सकता है। यहाँ इन्हीं दो प्रकार के परमात्माओं का वर्णन किया गया है। यह लेख मूलत: पठनीय मननीय है। – सम्पादक

अब तक हमने भगवान के नाम पर मन्दिरों में विराजमान उन प्रतिमाओं के ही भगवान के रूप में दर्शन किये हैं, जिनके सामने हजारों लोग मस्तक टेकते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं; यही कारण है कि हमारा मन डाटे-फटकारे जाने वाले जनसामान्य को भगवान मानने को तैयार नहीं होता। हम सोचते हैं कि ये भी कोई भगवान हो सकते हैं क्या? भगवान तो वे हैं, जिनकी पूजा की जाती है, भक्ति की जाती है। सच बात तो यह है कि हमारा मन ही कुछ ऐसा बन गया है कि उसे यह स्वीकार नहीं कि कोई दीन-हीन जन भगवान बन जावे। अपने आराध्य को दीन-हीन दशा में देखना भी हमें अच्छा नहीं लगता।

भाई, भगवान भी दो तरह के होते हैं – एक तो वे अरहंत और सिद्ध परमात्मा, जिनकी मूतियाँ मन्दिरों में विराजमान हैं और उन मूर्तियों के माध्यम से हम उन मूर्तिमान परमात्मा की उपासना करते हैं, पूजन भक्ति करते हैं; जिस पथ पर वे चले, उस पथ पर चलने का संकल्प करते हैं, भावना भाते हैं। ये अरंहत और सिद्ध कार्य परमात्मा कहलाते हैं।

दूसरे, देहदेवल में विराजमान निज भगवान आत्मा भी परमात्मा

है, भगवान है; इसे कारणपरमात्मा कहा जाता है।

जो भगवान मूर्तियों के रूप में मन्दिरों में विराजमान हैं; वे हमारे पूज्य हैं, परमपूज्य हैं; अतः हम उनकी पूजा करते हैं; भक्ति करते हैं, गुणानुवाद करते हैं; किन्तु देहदेवल में विराजमान निज भगवान आत्मा श्रद्धेय है, ध्येय है, परमज्ञेय है; अतः निज भगवान को जानना, पहिचानना और उसका ध्यान करना ही उसकी आराधना है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति इस निज भगवान आत्मा के आश्रय से ही होती है; क्योंकि निश्चय से निज भगवान आत्मा को निज जानना ही सम्यग्ज्ञान है, उसे ही निज मानना, 'यही मैं हूँ- ऐसी प्रतीति होना सम्यग्दर्शन है और उसका ही ध्यान करना, उसी में जम जाना, रम जाना, लीन हो जाना सम्यक्चारित्र है।

अष्टद्रव्य से पूजन मन्दिर में विराजमान 'पर-भगवान' की की जाती है और ध्यान शरीररूपी मन्दिर में विराजमान 'निज-भगवान' आत्मा का किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति निज-आत्मा को भगवान मानकर मन्दिर में विराजमान भगवान के समान स्वयं की भी अष्टद्रव्य से पूजन करने लगे तो उसे व्यवहार-विहीन ही माना जायेगा; वह व्यवहारकुशल नहीं, अपितु व्यवहारमूढ़ ही है।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति आत्मोपलब्धि के लिए ध्यान में भी मन्दिर में विराजमान भगवान का ही करता रहे तो उसे भी विकल्पों की ही उत्पत्ति होती रहेगी, निर्विकल्प आत्मानुभूति कभी नहीं होगी; क्योंकि निर्विकल्प आत्मानुभूति निज भगवान आत्मा के आश्रय से ही होती है। निर्विकल्प आत्मानुभूति के बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति भी नहीं होगी। इस प्रकार उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग का आरंभ ही नहीं होगा। ●

▲ हमारे प्रकाशन ▲

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे–

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**–इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।